श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ का
संक्षिप्त-परिचय

युग प्रधान दादा साहब श्री जिनदत्तसूरिश्वरजी म के अष्टम शताब्दी के उत्सव पर वि स २०१३ में अजमेर नगर इस अखिल भारतीय संस्था का जन्म हुआ था। इसका उद्देश्य सब क्षेत्रों की सर्वाङ्गीण उन्नति करते हुये समाज में एकता, संगठन एव प्रेम की वृद्धि करना है।

गत आठ वर्षों में इस संस्था ने जो कार्य किये हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

(१) समाज के कई छात्रो को ऋण एव छात्रवृत्तियां दी गई। इन विद्यार्थियो में से कुछ ने डाक्टरी, इंजिनियरी आदि का शिक्षण प्राप्त किया है।

(२) इस संस्था न साहित्यिक जागृति को ध्यान म रखकर २२ प्रकाशन किये हैं। इनमें श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत चौवीसी का का भाव पूर्ण हिन्दी अनुवाद खरतरगच्छ का इतिहास तथा दादावाडी-दिग्दर्शन प्रमुख है।

(३) संघ के सतत प्रयत्नों एव सहायता से आगरा, शाजा पुर, अजमेर रतलाम उज्जैन बदनावर, जावरा मालगढ़, मन्दसौर, किशनगढ़, मालपुरा आदि स्थानों पर स्थित दादा-बाडियों का जीर्णोद्धार कराया गया।

(४) श्री हरिभद्रसूरि समिति मन्दिर चित्तौड़ तथा अन्य कई स्थानों पर मन्दिरो को आर्थिक सहायता दी गई।

(५) धार्मिक ट्रस्ट बिल, देवनार कत्लखाने के विरोध म इस संस्था ने देशव्यापी प्रचार किया। इसी प्रकार जैन धर्म पर

(शेष कवर पेज के पृष्ठ २ पर)

❀ विचक्षण-वाणी ❀

[परम पूज्या प्रवर्तिनाजी श्रीमती सुवर्ण श्रीजी म सा, जतन श्रीजी म सा की विदुषी शिष्या श्री विचक्षण श्रीजी महाराज साहब के रतलाम के प्रवचनों का संग्रह]

सम्पादक —

डा. प्रेमसिंह राठौड़ M. B. B S.

[भू. पू. स्वास्थ्य मंत्री [illegible]]

श्री जैन श्रीसंघ, रतलाम

प्रथमावृत्ति
२००० प्रतियाँ

अमूल्य भेंट

वीर सं. २४९०
ई० सन १९६३

द्रव्य सहायकों की नामावली —

२०१) रु श्रीमान रतीचन्दजी लूणावत, बामनिया वाला
१०१) रु ,, धूरालालजी राजमलजी डोसी, चौमेला वाला
१०१) रु ,, जड़ावचन्दजी गादिया, रतलाम
१०१) रु ,, श्री खरतरगच्छ संघ, रतलाम
१०१) रु ,, कस्तूरचन्दजी रतनलालजी, जावरा
५१) रु ,, चांदमलजी सागरमलजी, रतलाम
५१) रु ,, वल्लभरायजी कुमठ, इनकम टेक्स आफिसर रतलाम
५१) रु ,, डूंगाजी घासीजी रतलाम
५१) रु ,, लालचन्दजी चांदमलजी, रतलाम
५१) रु ,, समरथमलजी बच, रतलाम
५१) रु ,, सौभागमलजी गादिया, रतलाम
५१) रु ,, शार्दूलसिंहजी मेहता, रतलाम
५१) रु ,, चांदमलजी नगावत, रतलाम
५१) रु ,, चांदमलजी श्रीपालजी, पून्याखेड़ी
५१) रु ,, श्री धर्मोत्तेजक महिला मण्डल, रतलाम
५१) रु ,, सौभाग्यमलजी छाजेड़, रतलाम
५१) रु ,, मन्नालालजी हस्तीमलजी
५१) रु ,, गेंदीलालजी छुट्टनलालजी, जयपुर
५१) रु ,, श्री खाचरौद श्रीसंघ खाचरौद
५१) रु ,, पन्नालालजी चौपड़ा की धर्मपत्नी, खाचरौद

समर्पण

व्याख्यान भारती, भारत जैन कोकिला, विश्वधर्म-प्रचारिका, समन्वय साधिका पूज्य साध्वीजी विचक्षण श्रीजी म सा को श्री जैन श्रीसंघ रतलाम द्वारा सादर समर्पित—

(द्रुत विलम्बित छन्द)

वर सु रत्नपुरे वरा वर्धिका,
पद दद च समन्वय साधिका।
मुदित मानस मध समर्पिता,
वर विचक्षण वाणि सु पुस्तिका॥

'विचक्षण-स्तुति'

शार्दूल विक्रीडितम् [छन्द]

ज्ञानाराम विराजिता भगवती, ससार निस्तारिका,
श्री वीरागम वाहिनी सुविनता अध्यात्मभि सस्तुता।
सद्भक्त्या प्रभु पाद पद्म निरता सज्ज्ञान सज्योतिका
जीयात् सा जननी समा विजयिनी विज्ञा जगत्या सदा॥१

वाग्मत्या ललिता सुभेन मधुरा तत्वार्थ सशोधिता,
मिथ्या मोह विनाशिनी सुविमला ज्ञानाब्धि रत्नावलि।
शान्ता शुद्धमयी सुशास्त्र निपुणा या भासते भारते
जीयात् सा जननी समा विजयिनी विज्ञा जगत्या सदा॥२

नित्यानन्दमयी प्रसन्न वदना सौजन्य सद्भूषिता,
तथ्यातथ्य विवेचिका विधियुता सन्मार्ग सन्दर्शिका ।
गाम्भीर्यादि गुणेषु पूर्ण कुशला स्याद्वाद सपोषिका,
जीयात् सा हि विचक्षणा विजयिनी विख्या जगत्यां सदा ॥३

विश्वस्मिन् विबुधै-र्विशारद वरै यो विश्रुता संस्तुता,
शब्दोद्यान सुकोकिला रसमयी ह्यानन्द सचारिणी ।
निर्लिप्ता सुमनोहरा सुरमयी सद्व्रतै शोभिता,
जीयात् श्री सुविचक्षणा विजयिनी विख्या जगत्यां सदा ॥४

'रूपा' मातृ समुद्भवा च महता 'मिश्रीमलाख्यात्मजा',
देश ग्राम विहारिणी जन मनरस देह-संहारिणी ।
या शिष्या सकला सदैव सुहृदा प्रीत्या समारक्षिका,
जीयात् सा जननी जया विनयिनी विख्या जगत्यां सदा ॥५

— *द्रुत विलम्बित* —

करुणयार्द्र सुता च सुधामयी,
परम पुण्यवती शुभ साधिका ।
विमल कीर्तिलताऽवनि मण्डले,
सुफल पुष्पवती सुखदायिनी ॥१
मधुर वाचि सदा मधुर सुधा,
वहति या वरदा विबुधार्चिता ।
स्फटिक शुद्ध समुज्ज्वल मानसे,
धरति तत्त्वचयान् निज बोधकान् ॥२
सुमतमा हि समन्वय साधिका,
कलित कान्तिमयी सरसा शुभा ।
मल तमो हरणे नव चन्द्रिका,
जयति सा विदुषी सु विचक्षणा ॥३

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१५	उसा	उसी
१३	३	सक्ता	सक्ती
१६	११	दिवाल	दिवालें
३१	१७	रखने	रक्खे
३२	९	को	कौ
३६	१	डबी	डूबो
३९	२२	अगर हमने	हमने
४३	२१	वश्व	विश्व
६१	१०	कोध	क्रोध
६५	३	गर	अगर
६६	१०	नान शक्ति	ज्ञान शक्ति
६९	१०	पार पराइ	पोर पराई
७२	४	चार	चोर
७७	५	आध्यात्मक	आध्यात्मिक
७८	२०	परिपूण	परिपूर्ण
७९	१५	दव	दवा
८७	१४	दरिद्रना	दरिद्रता
९२	१	दानों	दोनों
			जैन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०८	२३	वीनों	तीनों
११५	२०	छोटा	छोटे
११८	१४	हू	हूँ
१२०	१६	ज्योतियों	ज्योतियाँ
१२५	१८	जैसी दृष्टि वसी सृष्टि	जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि
१२६	१०	धम	धर्म
१३३	११	पर की मदा	पर की धारा सदा
१३४	११	जन	जैन
१३६	१३	माइया	भाइयों
१४२	१२	सम्यगद्शान	सम्यग-दर्शन
१५१	१८	क्रोधं मां कुरू	मार्ध मा कुरू
१५७	१४	फा	पा
१६०	२	मडलेश्वर	मण्डलेश्वर
१७१	८	वर्प	वर्प में
१७३	६	गहा	रहा
१७४	१	आचार्य ने हेमचंद्राचार्य	आचार्य हेमचंद्राचार्य
१७५	८	हेमचंदाचार्य	हेमचन्द्राचार्य
१७६	१०	अंतर विप	अंतर में विप
१८२	११	वैसा	कैसे
१८३	८	फा	का

विषय-सूची

विश्व प्रेम प्रचारिका व्याख्यान भारती
जैन कोकिला समन्वय साधिका
बाल ब्रह्मचारिणी आर्यारत्न
पूज्य *श्री विचक्षणश्रीजी महाराज साहब*

दो शब्द

इतिहास में आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा सं १९६९ का दिन अमर रहेगा, जब पीपाड़ ग्राम निवासी श्री मिश्रीमलजी मूथा की धर्मपत्नी रूपादेवी की कुक्षी से एक पुत्री रत्न का जन्म अमरावती में हुआ। आपका बचपन का नाम कन्नीबाई था, पर मधुरवाणी के कारण आप शीघ्र ही बालाबाई के नाम से पुकारी जाने लगी।

बचपन में ही पिताजी एवं छोटी बहिन का देहान्त होने के कारण से आपकी माता श्री को वैराग्य हो गया और सं १९८१ ज्येष्ठ कृष्णा ५ को माता श्री एवं पुत्री बालाबाई ने परम पूज्य साध्वीजी श्री जतन श्रीजी से भागवती दीक्षा ग्रहण की। माता श्री का नाम श्री विज्ञान श्रीजी और बालाबाई का नाम श्री विचक्षण श्रीजी रखा गया। चातुर्मास की समाप्ति पर जोधपुर में माघ-शुक्ला ५ को गणाधीश्वर श्री हरिसागर सूरीश्वरजी महाराज के करकमलों द्वारा बृहद् दीक्षा दी गई और विज्ञान श्रीजी को प्रवर्तनी श्री सुवर्ण श्रीजी महाराज साहब तथा विचक्षण श्रीजी को जतन श्रीजी महाराज सा. की शिष्या के रूप में घोषित किया गया।

पूज्य साध्वीजी विचक्षण श्रीजी महाराज सा. ने सात वर्ष की अल्प अवधि में व्याकरण, काव्य, कोष, न्याय आदि विषयों तथा आगमों का गहन अध्ययन कर लिया। आपकी व्याख्यान शैली से सभी प्रभावित होने लगे। जयपुर श्रीसंघ ने आपको *"व्याख्यान-भारती"* तथा नागौर में बीकानेर चातुर्मास के पश्चात परम पूज्य आचार्यदेव श्री विजय वल्लभ सूरिजी महाराज सा. ने आपको *"भारत जैन कोकिला"* मन्दसौर श्रीसंघ ने *"विश्व-प्रेम प्रचारिका"* तथा रतलाम श्रीसंघ ने आपको *"समन्वय-साधिका"* की पदवी से विभूषित किया।

चरित्र निर्माण पर आप बहुत ज्यादा बल देती है। आप श्री ने "चरित्र निर्माण संघ" स्थापित किया है। इस संघ के सदस्य निष्ठा पूर्वक अधिक से अधिक नियमों का पालन करने का निरंतर प्रयत्न करते रहते है।

मंदसौर चातुर्मास के अवसर पर परम पूज्य साध्वीजी विचक्षण श्रीजी महाराज सा. के प्रवचन सुनने का मुझे अवसर प्राप्त हुवा। सभी के हृदय में यह तीव्र इच्छा थी कि आपका चातुर्मास रतलाम में होना चाहिए। स्थानीय खरतरगच्छ संघ के प्रतिनिधियों ने नीमच जाकर साध्वीजी महाराज सा से रतलाम पधारने की विनति की। रतलाम के सौभाग्य से आप अपनी पूज्य माता श्री विज्ञान श्रीजी म. सा. एवं सुवर्ण मंडल की अन्य साध्वियों सहित चैत्र सुदी १२ सं. २०१० को रतलाम पधारीं। अगले दिन महावीर जयंती थी। इस अवसर पर वर्धमान स्था. श्रमण संघ के मालव-मंत्री श्रीहीरालालजी म. सा. पूज्य दिगंबर क्षुल्लकजी श्री पूर्ण सागरजी म. सा. एवं पूज्य विचक्षण श्रीजी म. सा. के सामूहिक सार्वजनिक प्रवचन हुए जिनका सभी क्षेत्रों में स्वागत हुवा। कुछ दिनों के बाद वर्धमान स्था. श्रमण संघ के महाराष्ट्र मंत्री श्री सौभाग्यमलजी म. सा. के साथ आप श्री के सार्वजनिक प्रवचन हुवे।

पूज्य साध्वीजी म. सा. के हृदयस्पर्शी संघ धर्म समन्वय, समता विश्व प्रेम और संगठन पर हुवे प्रवचनों ने रतलाम के धार्मिक जगत में क्रांति पैदा करदी। विग्रह और विभाग की दिवालें तोड़कर स्नेह की सतत धारा बहाने वाले प्रवचनों ने जनता की आध्यात्मिक पिपासा को जाग्रत कर दिया। सभी का एक ही निवेदन था कि चातुर्मास रतलाम में ही हो पर मांडूरी की ओर विहार का निश्चय हो गया, अचानक ही एक कंकड़ पर पांव फिसल जाने से आपको पसलियों में चोट आ गई। चिकित्सा की सुविधा की दृष्टि से कुछ समय के लिये आप चांदनी में सेठ चांदमलजी सागरमलजी आलोट वालों के भवन में ठहरी। मुझे भी चिकित्सक के नाते सेवा का लाभ मिला। श्री सागरमलजी आलोट वाले

तथा नाथूलालजी धारीवाल ने चिकित्सा काल में पूरी लगन से सेवा की।

वि. १७ ६ ६३ को श्र मा जिनदत्तसूरि सेवा संघ के उपाध्यक्ष श्री गुलाबचन्दजी गोलेछा तथा प्रधान मन्त्री श्री प्रतापमलजी सेठिया को स्थानीय खरतरगच्छ श्री संघ की ओर से मान पत्र देने के अवसर पर जैन समाज के स्थानक, मंदिर एवं दिगंबर समाज के प्रमुख व्यक्तियों ने रतलाम में चातुर्मास करने की विनति की जो स्वीकार हो गई।

स्थानीय खरतरगच्छ पेढ़ी के समस्त पदाधिकारी और कार्यकर्ता व्यवस्था में जुट गये और शीघ्र ही एक भव्य पन्डाल का निर्माण हो गया। सेठ मगनीराम ममूतसिंहजी की फर्म और उनके मुनीम सज्जनसिंहजी चोरड़िया का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ और हवेली में यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था की गई। चातुर्मास की सारी व्यवस्था को सुचारु रूप से करने में संघ श्री छगनलालजी चोपड़ा नाथूलालजी धारीवाल सागरमलजी आलोट वाला पन्नालालजी दासोत हस्तीमलजी चोपड़ा एवं चांदमलजी पूंगलिया वालों के अतिरिक्त संघ श्री कांतिलालजी पोरवाड़ सुजानमलजी चोपड़ा चम्पालालजी दासोत, सादुलसिंहजी महता हीरालालजी सराफ केसरिसिंहजी लालन प्यारसिंहजी चोरड़िया नवरतनसिंहजी जिंदानी इन्द्रकुमारजी चोरड़िया, मानकलालजी भागवान, जुहारमलजी कोठारी पुखराजजी बोहरा हीरालालजी चोपड़ा, इंदरमलजी लालन धीसमलजी कांठेडिया मोहनलालजी राखेचा सौभाग्यमलजी खाबिया फकीरचंदजी चोपड़ा वर्धीचन्दजी गादिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

युग प्रधान आचार्य जिनदत्त सूरिजयन्ति का एक विशाल कार्यक्रम आयोजित किया गया था परन्तु दुर्भाग्यवश उसी दिन वर्धमान स्था. श्रमण संघ के मुनि श्री चम्पालालजी महाराज सा० का स्वर्गवास हो गया। पूज्य साध्वीजी के आदेश से जयन्ती के कार्यक्रम अगले दिन के लिए स्थगित कर दिये गये। स्वर्गीय म० सा की डोल जब उपाश्रय के सामने से निकली तो समस्त साध्वी मंडल ने उनका सम्मान किया।

दूसरे दिन जयन्ती का कार्यक्रम बड़े धूमधाम से मनाया गया जिसमें मुनि श्री मूलचन्दजी महाराज सा. सम्मिलित हुए।

श्रीकृष्ण जयन्ती स्थानीय जिला कलेक्टर पटेरिया साहब की अध्यक्षता में मनाई जाने वाली थी, पर उनकी अवस्थता के कारण डिप्टी कलेक्टर श्रीमान लक्ष्मीनारायण करवा की अध्यक्षता में मनाई गई। आचार्य हेमचन्द्राचार्य की जयन्ती भी बड़ धूमधाम मनाई गई। संत विनोबा जयन्ती भी पूज्य साध्वीजी के सानिध्य में मनाई गई।

वर्धमान स्था. श्रमण संघीय तपस्वी मुनि श्री सागरमलजी म० सा० के ४६ दिन के उपवास की समाप्ति के अवसर पर आयोजित तपोत्सव तथा स्वर्गीय जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज सा० की जयंती के अवसर पर पूज्य साध्वीजी, नौलचौक स्थानक पर पधारी एवं प्रवचन दिया।

पूज्य साध्वीजी को शासकीय बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बनियाबो महिला प्रशिक्षण संस्था जैन हायर सेकण्डरी स्कूल जैन बालिका हायर सेकण्डरी स्कूल एवं विद्यार्थी यूनियन द्वारा प्रवचन लिये आमंत्रित किया गया। अध्यात्मिक सम्मेलन में भी आपके प्रवचन के हुवे। त्रिस्तनिश उपाश्रय में आयोजित श्री राजेन्द्र जैन पाठशाला के द्वितीय वार्षिकोत्सव के अवसर पर त्रिस्तुतिक संघ द्वारा श्री राजेन्द्र अभिधान कोष के सातों भाग साध्वी मंडल के उपयोग के लिये 'पुण्यसागर सुवर्ण भण्डार' बीकानेर को संघ के वयोवृद्ध अग्रणी श्री मायूलालजी सा द्वारा भेंट किया गया। स्वर्गीय महामण्डलेश्वर पूज्य सर्वानंदजी महाराज सा० के शिष्य मण्डलेश्वर मुनि श्री रमेश मुनिजी के साथ आपके प्रवचन हुए। श्री दिगम्बर जैन नवयुवक मंडल के आमंत्रण पर आप तोपखाना स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर में पधारी एवं वहीं प्रवचन दिये। महिला ... द्वारा आयोजित सभाओं में भी आपके प्रवचन हुए। खरतरगच्छ द्वारा "श्री विचक्षण जैन संगीत शाला" स्थापित की गई।

विहार के पूर्व दिनांक २ ११ ६३ को आयकर अधिकारी श्री बलभद्रराजजी कुम्मट साहब के समापतित्व में एक स्नेह सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें पूज्य मुनि श्री मूलचन्दजी म० सा० भी पधारे थे। इस सम्मेलन में पूज्य साध्वीजी महाराज सा को *समन्वय-साधिका* की उपाधि से श्री संघ द्वारा विभूषित किया गया।

चातुर्मास काल में पूज्य साध्वीजी के साथ उनकी आज्ञा पूज्य विज्ञान श्री जी म० साहब, विदुषी अविचल श्री जी म साहब रतलाम में विराज हुए प्रमोद श्रीजी महाराज सा चन्द्रकला श्रीजी महाराज साहब म हेरश्रीजी महाराज सा सुलोचना श्रीजी महाराज सा गुणमाला श्रीजी महाराज सा० मणिप्रभा श्रीजी महाराज सा तथा मनोरमन श्रीजी म० विराजमान थे। इनकी अनुकरणीय सरल जीवनचर्या, दृढ़ चरित्र पालन तथा अनुशासनात्मक जीवन न सभी को प्रभावित किया है।

दिनांक ७ ११ १९६३ को आपका विहार स्टेशन पर हुआ। स्टेशन पर अठ्ठाई महोत्सव रात्रि को भक्ति तथा शांति स्नात्र पूजा का आयोजन किया गया। श्री वर्धमान महिला मण्डल द्वारा आम रण भी किया गया। यह परम सौभाग्य की बात थी कि इस अवसर पर तपागच्छीय पूज्य फलगु श्रीजी महाराज सा भी स्टेशन पर पधारी तथा वहां कुछ दिनों तक पूज्य विचक्षण श्री जी महाराज सा के साथ आपके प्रवचन हुए। स्टेशन पर जनता के अति भावपूर्ण आग्रह पर आप १२ दिन तक विराजे। स्टेशन क्षेत्र में इस प्रकार के भव्य आयोजन करने का श्रेय आयकर अधिकारी श्री बलभद्रराजजी कुंमट, राव श्री सेठ कन्हैयालालजी कन्चन मांगीलालजी विजयवर्गीय रूपचन्दजी कावड़िया, राजमलजी चडालिया, सागरमलजी सौभाग्यमलजी छाजेड़ समरथमलजी बम तथा श्री पारसनाथ जन मित्र मण्डल के समस्त कार्यकर्ताओं को है।

दिनांक १८ ११ ६३ को आपका विहार स्टेशन से सेजावता ग्राम हुआ। इस अवसर पर हजारों नर-नारियों न अश्रुपूर्ण नयनों से ... दी, वह हृदय ... नहीं जा सकता है। पूज्य

श्रीजी महाराज साहब ने अपनी वाणी और व्यवहार से स्नेह का जो पाठ पढ़ाया, सब धर्म समन्वय का जो रंग चढ़ाया दिल व दिमागों की दीवारें तोड़ने का जो सत्प्रयत्न किया और *'मित्ती मे सव्व भूएसु'* का जो अमृत पिलाया उसका रतलाम की समस्त जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा है

सैलाना से आप नामली तथा सेमलिया पधारी। इन दोनों स्थानों पर पुराने झगड़े थे, आपके प्रवचन का ऐसा जादू सा असर हुआ कि समस्त झगड़े समाप्त हो गये। खाचरोद में आपका अपूर्व स्वागत हुआ। मन्दिर, स्थानक, जन-अजन हजारों की जनता ने आपका नगर के बाहर स्वागत किया सौभाग्य से इस समय वहाँ पर श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के आचार्य पूज्य आनन्द ऋषिजी महाराज सा० महाराष्ट्र मंत्री श्री सौभाग्यमलजी महाराज सा तथा तपस्वी मुनि श्री लाभचन्दजी महाराज सा भी विराजमान थे। पूज्य साध्वीजी विचक्षणश्रीजी म० सा० उनसे मिलने स्थानक पधारी। उपस्थित जनता को पूज्य आचार्य महाराजा,श्री महाराष्ट्र मंत्रीजी तपस्वीजी तथा साध्वीजी ने संबोधित किया।

पूज्य साध्वीजी के प्रवचनों को पुस्तक रूप में छपवाने का जनता का बड़ा आग्रह था। श्र छुट्टनलालजी बम्बईवाली ने टेप रिकार्ड मशीन भेज दी जिससे काम सरल हो गया। संपादन कार्य मेरे लिये बिल्कुल नया था। फिर भी यह प्रयास आपके सम्मुख है। भूल चूक के लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूं। पुस्तक की छपाई एवं प्रूफ देखने के काम जनोदय प्रेस के भाई श्री लीलाधरजी मलवाया ने किया जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। श्री प्रतापमलजी सा० सेठिया के सहयोग के लिये तथा सभी अन्य सहायकों का भी मैं आभारी हूं कि जिनकी उदार सहायता के कारण ही इस पुस्तक का छपाना संभव हो सका। चातुर्मास काल में अनेक आयोजनों के संयोजक के रूप में जिन भाई बहिनों ने मुझे सहयोग दिया उन सबका भी मैं हृदय से आभारी हूं। श्री खरतरगच्छ पेढ़ी के कार्यकर्ताओं के स्नेहपूर्ण सहयोग के लिये मैं सदैव आभारी रहूंगा।

—डॉ० प्रेमसिंह

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ पेढ़ी द्वारा

आभार प्रदर्शन

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ पेढ़ी के आग्रह पर परम पूज्य श्री १०८ श्री विचक्षण श्री जी महाराज सा. अजना मातश्री श्री विज्ञान श्री जी महाराज साहब एवं गुरुण मण्डल की साध्वियों सहित रतलाम पधारी। पांव शिथिल आने के कारण चिकित्सा के हेतु आपका यहां ठहरना पड़ा तथा हमारे पुण्योदय के फल स्वरूप आपने चातुर्मास यहीं करने की स्वीकृति प्रदान की। चातुर्मास को सानन्द सफल बनाने की जिम्मेदारी पेढ़ी के कार्यकर्ताओं ने आप सबके सहयोग के बल पर उठाली और रतलाम का पूज्य साध्वीजी का ४० वां चातुर्मास चिरस्मरणीय बन गया। जिन भाइयों और बहिनों के सहयोग से यह चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ, उन सबका हम आभार मानते हैं। जि कलेक्टर श्री पटरिया सा., डिप्टी कलेक्टर श्री चौहान साहब, डिप्टी कलक्टर श्री मुकुटेश्वरसिंहजी, डिप्टी कलेक्टर श्री लक्ष्मीनारायणजी वरमा तथा अन्य शासकीय एवं म० पा० के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति हम आभार प्रदर्शित करते हैं कि जिनके सहयोग के कारण विभिन्न कार्यक्रम सफल हो सके।

सेठ मगनीरामजी अमृतसिंह ने की फर्म एवं उनके मुनीम श्री राजेन्द्रसिंहजी चोरड़िया के पूर्ण सहयोग के लिये हम उनके आभारी है। श्रीमान सेठ सा की हवेली में बाहर से आये हुए महमानों के ठहरने की व्यवस्था की गई थी।

हम सर्व श्री डॉ० अम्बालालजी जोशी, शांतिकुमारजी गोलछा वकील चांदमलजी मेहता अमृतलालजी काठारी एवं चिंतामणिजी लाल्ला के परिवार के सदस्यों के भी उनके सहयोग के लिये आभारी हैं।

विभिन्न कार्यक्रमों में पधारने वाले कार्यकर्ताओं के भी हम आभारी हैं।

स्थानीय तपागच्छ संघ त्रिस्तुतिक संघ जन नवयुवक संघ वर्धमान तथा श्रावक संघ, साधुमार्गी जन संघ, दिगम्बर नवयुवक मण्डल दिगम्बर संघ तेरापंथी संघ अन्य संघों एवं महिला मंडलों व वैष्णव समाज के प्रति भी उनके सहयोग के लिये हम आभार प्रदर्शित करते हैं।

रतलाम नगर के दैनिक पत्र 'आलोकन' परिवार तथा साप्ताहिक पत्र 'उपग्रह' परिवार के सहयोग के लिये भी हम उनके आभारी हैं।

श्री चांदमल सागरमल आलोट वालों की फर्म के श्री सागरमलजी के भी हम पूर्ण आभारी हैं। चिकित्साकाल में पूज्य साध्वीजी महाराज सा की सेवा आपने व श्री माधुलालजी घाटीवाल ने की वह सराहनीय है।

कार्तिक पूनम की तीर्थ विवहोद की पूजा एवं स्वामी वात्सल्य में जिन महानुभावों ने सहयोग दिया उनके भी हम आभारी हैं।

स्टेशन क्षेत्र में महाराज सा १३ दिन विराजे उसकाल में आयकर अधिकारी श्री बलभद्रराजजी कुमट सदै श्री मोतीलालजी विजय वर्गीय तथा श्री पारसनाथ जैन मित्र मण्डल ने जिस अनुपम उत्साह, भक्ति और श्रद्धा के साथ सभी कार्यक्रमों को उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न किया उसके लिये हम उनके बड़ आभारी हैं।

एक चिकित्सक, विभिन्न कार्यक्रमों के संयोजक एवं इस पुस्तक "विचक्षण वाणी" के संपादक के रूप में डॉ प्रेमसिंहजी राठौड़ (भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री मध्यभारत) ने जो सेवायें की और सहयोग दिया उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

अंत में जिन जिन महानुभावों ने हमें पूर्ण सहयोग दिया उनका आभार मानते हुए इस चातुर्मास काल में हुई हमारी त्रुटियों के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

— *विनीत* —

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ पेढ़ी, त्रिपोलिया रतलाम

विचक्षण-वाणी

दो अनमोल रत्न-

अहिंसा और अनेकान्त

आज हम यहाँ विश्व-उद्धारक, अहिंसा के अवतार, सत्य के साकार रूप भगवान महावीर की जयन्ती मनाने को एकत्रित हुए हैं। आज के दिन का एक और विशेष महत्व यह है कि आज समस्त जैन समाज के श्रावक श्राविकायें सामूहिक रूप से वीर-जयन्ती मना रहे हैं। यहाँ मंच पर परम आदरणीय विद्वद् रत्न मुनि श्री हीरालालजी महाराज साहब तथा मुनि मंडली एवं साध्वियों में महामनस्विनी विचक्षणश्रीजी पूज्य आगमज्ञी विराजमान

है जिनके अमृतमय प्रवचन भगवान महावीर के जीवन तथा सिद्धान्तों पर आपने अभी सुने हैं। अब मेरे पास कहने को कुछ नहीं बचा है दूध और मिठाई तो दोनों महापुरुषों ने अभी आपको खिला पिला दी हैं। अब मेरे पास तो केवल जल बचा है। पर माल खाने के बाद मुख-शुद्धि के लिये पानी की भी आवश्यकता होती है।

बन्धुओ! भगवान् महावीर का जन्म आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व एक ऐसे समय में हुआ था, जब स्थूल-क्रियाकांड, तथा यज्ञ में पशुबलि देने का बोलबाला था। दास प्रथा द्वारा मानव का शोषण किया जा रहा था। स्त्रियों को पांव की जूती समझा जाता था और छुआछूत का भेद अपनी चरम सीमा पर था।

भगवान महावीर ने ३० वर्ष की आयु में भोग विलास को तिलांजलि देकर राज्य-वैभव को ठुकरा कर सभी सांसारिक सुखों को त्याग कर युवावस्था में दीक्षा ग्रहण की। बारह वर्षों तक भयकर कष्टों का सहन किया, कठोर तपस्या की। इस साधना के काल में आप पर विपत्तियों के पहाड़ टूटे पर आप शान्त और मौन रहे। देवराज इन्द्र ने वीर प्रभु की सेवा में आकर उपसर्गों से रक्षा करने की आज्ञा मांगी, पर प्रभु ने एक ही उत्तर दिया कि साधना की सफलता के लिये साधक को अपने आंतरिक बल पर ही निर्भर रहना चाहिये। किसी अन्य पर निर्भर रह कर साधना नहीं की जा सकती है।

भगवान महावीर बड़े उदार हृदय थे, उनकी करुणा दृष्टि मानवों तक ही सीमित नहीं थी, वे प्राणी मात्र के कल्याण की भावना रखते थे। उनके विरोधी उनके अपार प्रेम, शान्ति और क्षमा-शीलता को देख कर नत मस्तक हो जाते थे। चंड कौशिक सर्प ने जब क्रोधित होकर बार बार उन्हे डसा तो भी भगवान ने उस पर दया करके अमृतमय शीतल वचनों से उसका उद्धार किया। संगम देव ने छः महीनों तक अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर यातनायें देकर प्रभु को विचलित करने का प्रयास किया परन्तु अन्त में उसको भी हार माननी पड़ी। भगवान महावीर ने उसे कहा कि हे संगम ! तुमने मुझे कितने ही कष्ट दिये, प्रलोभनों द्वारा साधना से विचलित करने के अनेक प्रयास किये, परन्तु इससे मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा। मेरे हृदय में तो इस बात का दुःख हो रहा है कि अज्ञान वश तुमने जो दुष्कर्म किये हैं, उनका कितना दुःख तुम्हें भोगना पड़ेगा ? तुम्हारे भविष्य का ध्यान करके मुझे आंसू आ रहे हैं। जिस संगम देव ने प्रभु को इतना कष्ट दिया उसके लिये प्रभु का दिल तड़फ रहा है। परा काष्ठा थी यह करुणा की, दया की, क्षमा की और सहानुभूति की।

बन्धुओ ! आज भी हम तो पुस्तक पढ़ कर उपदेश देने लगते हैं, पर भगवान ने साढ़े बारह वर्ष तक अपने साधनाकाल में मौन रखा और केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद ही उन्होंने संसार को प्रकाश देने के लिये उपदेश देना आरम्भ किया। भगवान् महावीर का नाम लेते ही जैन संस्कृत और जैन दर्शन के दो—

अनमोल रत्न अहिंसा और अनेकांतवाद, हमारी आंखों के सामने आ जाते हैं।

ससार के सभी धर्मों ने अहिंसा के महत्व को माना है। परन्तु भगवान महावीर ने केवल मानव ही नहीं बल्कि चर अचर सभी प्राणियों के लिये अहिंसा का अति सूक्ष्म और गहन विवेचन किया है। भगवान महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है। जब भगवती अहिंसा मानव के मन मे प्रतिष्ठित हो जाती है तो धर्मकी ज्योति जलने लगती है, प्रेम का स्रोत बहने लगता है और मानव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से प्रेरित होकर विश्व के समस्त प्राणियों के साथ मैत्री भाव स्थापित कर लेता है। कहा भी है —

> अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दम ।
> अहिंसा परम दानमहिंसा परम तप ॥
> अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परम फल ।
> अहिंसा परम मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥
> अहिंसा परम ध्यानमहिंसा परमं तप ।
> अहिंसा परम ज्ञानमहिंसा परम पदम् ॥

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम दम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है। अहिंसा परम ध्यान है, अहिंसा परम ज्ञान है और अहिंसा ही परम पद है।

हिंसा दो प्रकार की होती है-द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा। प्राणनाशादि स्थूल हिंसा द्रव्य हिंसा है। भाव हिंसा मानसिक हिंसा है। हिंसा का संकल्प करना ही भाव हिंसा है। भाव हिंसा से दूसरों की हिंसा हो या न हो, अपना स्वयं का तो हनन हो ही जाता है। जैसे दियासलाई रगड़ खाकर स्वयं जल जाती है फिर भले ही वह दूसरे को जलाये या नहीं। जब हमारे मन में हिंसा के प्रति राग होता है द्वेष होता है चोरी करने का व्यभिचार करने का असद् भावना उत्पन्न होती है तो उसे हम भाव हिंसा कहते हैं। तत्वार्थ सूत्र में कहा है कि "प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।"

प्रमत्त योग द्वारा किसी के प्राणों का अपहरण करना हिंसा है। प्रमाद पन्द्रह प्रकार का होता है—चार विकथा (स्त्री कथा, भोजन कथा, राष्ट्र कथा, राज कथा) चार कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) पांच इन्द्रियां (स्पर्श रस, [illegible] चक्षु तथा श्रोत) एक निद्रा और एक प्रणय (स्नेह) [illegible] प्रकारों के प्रमाद के वश होकर मन, वचन, [illegible] वियोग करने को हिंसा कहते हैं।

आँसू पोंछना यह अहिंसा का दूसरा पहलू है। कहा भी है कि "धन और प्राणों से परोपकार करना चाहिये, क्योंकि परोपकार के पुण्य के बराबर सौ यज्ञों का भी पुण्य नहीं है। परोपकार शून्य मनुष्यों का जीना भी धिक्कार है।"

याद रखिये! मनुष्य समाज के अन्दर रहता है वह समाज से बाहर नहीं रह सकता है। इसलिये जब समाज में पाप फैला हुआ है गरीबों का शोषण हो रहा है, तब उनकी ओर उदासीन रहना भी हिंसा है और हम भी उसके भागीदार हैं। इसलिये समाज की सेवा करना मानव की सेवा करना, अहिंसा देवी के चरणों की पूजा करना है। कहा भी है कि "मानव की सेवा करना ईश्वर की सेवा करना है"। परन्तु आज तो हम पत्थरों की रक्षा करते हैं, मानव की नहीं।

महानुभावो! अहिंसा को जीवन में अपनाओ। जीवन को पवित्र करने के लिये अहिंसा गंगा के समान है इसमें स्नान करने से मनुष्य मानवता की पूर्णता को प्राप्त करता है। पातांजल योग शास्त्र में कहा है—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैर-त्यागः

जिसने अहिंसा को अपना लिया है, उसके पास वैर कभी नहीं टिकता है।

भाइयो ! जब तक हमारे विचार शुद्ध नहीं होंगे, मन में समता का भाव नहीं होगा तब तक हमारे लिए अहिंसा का आचरण करना मुश्किल होगा। विचारों की अहिंसा का नाम अनेकान्तवाद है। अनेकान्तवाद वह शस्त्र है जिसके द्वारा हम आपसी कलह साम्प्रदायिक द्वेष और क्लेश को मिटा कर प्रेम और सद्भावना की नदी बहा सकते हैं। हमारी मान्यता ही ठीक है, हमारे विचार ही ठीक है और दुनिया की सभी मान्यतायें असत्य हैं, सारे अन्य विचार गलत हैं, यह ऐकान्तिक आग्रह दृष्टि ही दुनिया के सारे झगड़ों के मूल में है। भगवान महावीर स्वामी एक ऐसे युग में उत्पन्न हुए थे जब इस प्रकार का एकान्तवाद अपनी चरम सीमा पर था। करुणानाथ भगवान महावीर ने समझाया कि दृष्टिकोण अलग अलग हो सकते हैं उन्हें समझने का प्रयत्न करो, दृष्टिकोण की भिन्नता को झगड़े का कारण मत बनाओ। भगवान ने समझाया कि सत्य एक और अखण्ड है। मानव उसके विभिन्न स्वरूपों को विभिन्न रूप से नहीं देखता है। एक व्यक्ति उसके एक रूप को देखता है, दूसरा व्यक्ति उसके दूसरे रूप को देखता है। यह बात एक उदाहरण देकर स्पष्ट रूप से समझाते हैं—एक गांव में कुछ अन्धे रहते थे। एक दिन वहां एक हाथी आया। अन्धे भी वहां पहुँचे और लगे उसे टटोलने। किसी ने उसकी सूंड पकड़ी, किसी ने पूंछ, किसी ने उसके कान पकड़े और किसी ने उसके पांव। वापस लौटकर वे हाथी का वर्णन करने लगे। जिसने पूंछ पकड़ी

थी वह बोला हाथी रस्सी के समान है, जिसने सूड पकड़ी थी वह बोला हाथी मूसल के समान है, जिसने कान पकड़ा था वह बोला हाथी सूपड़ा जैसा है और पांव पकड़ा था वह बोला हाथी खम्भे जैसा है। सब एक दूसरे को झूठा कह कर आपस में लड़ने लगे। तब एक समझदार व्यक्ति ने सारी बात सुनकर कहा कि तुम सब सच्चे हो, परन्तु तुम में से हरएक व्यक्ति ने हाथी का एक अंग टटोला है पूरा हाथी किसी ने नहीं टटोला है। इसलिए लड़ने का कोई कारण नहीं है। संसार में जितने भी एकान्तिक आग्रह करने वाले हैं वे पदार्थ के एक अंश को ही पूरा पदार्थ समझते हैं। अनेकान्तवाद आपसी संघर्षों को मिटाने का एक सशक्त अनूठा, अहिंसात्मक तरीका है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि स्याद्वाद का सिक्का सारे जगत में चलता है, इसकी मर्यादा के बाहर कोई वस्तु नहीं रह सकती।"

बन्धुओ! हम अपने आपको जैन कहते हैं भगवान महावीर के पुत्र कहते हैं उनके अनेकांतवाद में विश्वास करते हैं फिर भी अपने में गच्छ गच्छ के झगड़े हैं, सम्प्रदाय सम्प्रदाय के झगड़े हैं, श्वताम्बर श्वेताम्बर में झगड़े है स्थानकवासी स्थानकवासी म झगड़े ह। याद रखिये! मार्ग भिन्न भिन्न हो सकते हैं, पर धर्म एक है। परम्पराओं म, क्रिया कांडों मं मान्यताओं में परिवर्तन हो सकता है, पर धर्म तो त्रिकाल में नहीं बदलता है। आज हम यह समझ बैठे हैं कि अमुक मान्यता को मानने से ही मुक्ति होगी, पर यह धारणा गलत है। कहा भी है—

नाशाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे न तर्कवादे न च तत्ववादे ।
न पक्षसेवाश्रयणेन मुक्ति कषायमुक्ति किल मुक्तिरेव ॥

न दिगंबर बन जाने से मोक्ष मिलता है और न श्वेतांबर बन जाने से मोक्ष मिलता है न दुनिया भर के तर्क या तत्ववादों से मुक्ति मिलती है। जब क्रोध, मान, माया, लोभ से छुटकारा हो जायगा तभी मुक्ति मिलेगी।

इसलिये भाइयो! हृदय की संकीर्णता हटाओ, दिल की दिवारें तोड़ दो और मानव मानव गले लग जाओ।

बंधुवरो! उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है *'अप्पा कत्ता, विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।* आत्मा स्वयं ही सुख और दुख का कर्ता है और स्वयं ही उसका भोक्ता है। बाहर की कोई भी शक्ति उसे सुख दुख नहीं पहुंचा सकती। सच्चा सुख आत्मा में है। हमारे अन्दर ही सुख का भंडार है, एक ऐसा सुख का प्रवाह है जो कभी नहीं सूखता। भगवान महावीर ने बाहरी सुखों को शहद लगी हुई तलवार के समान बतलाया है। शहद चाटने जाओगे तो जबान कटेगा ही। पहले सुख और बाद में दुख प्राप्त होता है। बाहरी सुख क्षणिक है। हमारी इच्छायें अनन्त हैं और वे कभी पूरी नहीं हो सकती हैं। तृष्णा दुख का मूल कारण है। नीतिकार ने कहा है 'चहरे पर झुर्रियें पड़ गईं, सिर के बाल सफेद हो गये पर तृष्णा जवान होती जाती है।' इसलिये इच्छाओं को सीमित करना चाहिये। सच्चा सुख त्याग में है, भोग में नहीं।

थी वह बोला हाथी रस्सी के समान है, जिसने सूंड पकड़ी थी वह बोला हाथी मूसल के समान है, जिसने कान पकड़ा था वह बोला हाथी सूपड़ा जैसा है और पांव पकड़ा था वह बोला हाथी खंभे जैसा है। सब एक दूसरे को झूठा कह कर आपस में लड़ने लगे। तब एक समझदार व्यक्ति ने सारी बात सुनकर कहा कि तुम सब सच्चे हो, परन्तु तुम में से हरएक व्यक्ति ने हाथी का एक अंग टटोला है पूरा हाथी किसी ने नहीं टटोला है। इसलिये लड़ने का कोई कारण नहीं है। संसार में जितने भी एकान्तिक आग्रह करने वाले हैं वे पदार्थ के एक अंश को ही पूरा पदार्थ समझते हैं। अनेकान्तवाद आपसी संघर्षों को मिटाने का एक सशक्त अनूठा अहिंसात्मक तरीका है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि स्याद्वाद का सिक्का सारे जगत में चलता है, इसकी मर्यादा के बाहर कोई वस्तु नहीं रह सकती।"

बंधुओ! हम अपने आपको जैन कहते हैं भगवान महावीर के पुत्र कहते हैं उनके अनेकान्तवाद में विश्वास करते हैं फिर भी अपने में गच्छ गच्छ के झगड़े हैं, सम्प्रदाय सम्प्रदाय के झगड़े हैं, श्वेताम्बर श्वेताम्बर में झगड़ हैं स्थानकवासी स्थानकवासी में झगड़े हैं। याद रखिये! मार्ग भिन्न भिन्न हो सकते हैं, पर धर्म एक है। परम्पराओं में, क्रिया कांडों में मान्यताओं में परिवर्तन हो सकता है, पर धर्म तो त्रिकाल में नहीं बदलता है। आज हम यह समझ बैठे हैं कि अमुक मान्यता को मानने से ही मुक्ति होगी, पर यह धारणा गलत है। कहा भी है—

सुकृत का संबल

अभी आपने पूज्य मुनिवर सौभाग्यमलजी महाराज सा० का प्रेरणा दायक प्रवचन सुना। मेरा भी यह सौभाग्य है कि उनके दर्शन करने तथा उपदेश सुनने का यह अवसर प्राप्त हुआ।

बंधुओ! जैसा बीज होगा वैसा ही फल उत्पन्न होगा। बबूल के बीज को बोकर आम्रफल की आशा नहीं की जा सकती है। हमारे मन में भी जब तक सद्विचारों के बीज नहीं डालेंगे, तब तक हमारे चित्त की शुद्धि नहीं हो सकती है। हमारा मन मंदिर जब तक पवित्र नहीं बनेगा, मोह ममत्व से रहित न होगा, उसमें से विषय विकारों के अंकुर नष्ट न होंगे, तब तक नर से नारायण बनने की हमारी इच्छा पूरी नहीं हो सकती।

महानुभावो ! जब बरसात के दिनों में नदी पूर आती है तो वह किनारे का सारा कूड़ा करकट बहाकर ले जाती है। हमारे अन्दर भी स्नेह की धारा सूख गई है जिससे हम में निंदा का आलोचना का, द्वेष का, घृणा का, एक दूसरे को पराया समझने का कचरा इकट्ठा हो गया है। आप प्रेम की ऐसी गंगा बहाओ कि यह सब कचरा धुल जावे और भगवान के वचन *'मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्झ न कणई'* जिसमें मेरी सबसे मैत्री है, किसी से वैर नहीं है साथक कर सको।

आज इस जयंती के पवित्र पर्व पर आप ज्ञान और प्रेम का दीप जलाओ। अहिंसा, सत्य, दया, शान्ति और विवेक के पुष्प प्रभु के चरणों पर चढ़ाओ। आप वीर प्रभु के पुत्र हैं, संगठित होकर महावीर के 'विश्व मैत्री' के संदेश को घर घर पहुँचाओ और अपने जीवन में भी उतारो। मैं प्रभु से यही प्रार्थना करती हूं कि जिस प्रकार यह सामूहिक आयोजन करके आप एक दूसरे के निकट आये हैं, उसी प्रकार भविष्य में भी एक दूसरे के निकट और अधिक आवेंगे और संगठन की बिगुल बजावेंगे।

ॐ शांति शांति शांति

बजाजखाना,
रतलाम ६-४-६३

आर्थिक क्रांतियाँ हो रही हैं, परन्तु आध्यात्मिक चर्चा कम सुनाई दे रही है। हमारे आज के विचारक, आज के नेता यह महसूस करने लगे हैं कि सारी क्रांतियां तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक आज का मानव चरित्र निर्माण की ओर आत्म-चिंतन की ओर, आत्म विश्वास की ओर अग्रसर नहीं होता है। मानव जब तक स्वार्थ की दृष्टि से केवल अपने परिवार का हित अहित सोचेगा तब तक उसका प्रेम सीमित होने के कारण मोह या ममत्व कहलायगा। लेकिन जैसे ही उसकी दृष्टि पारमार्थिक हुई उसका प्रेम विश्व के प्रांगण में नदी के रूप में बहेगा। आज स्वार्थ ने हमारी दृष्टि पर पर्दा डाल दिया है और हम मोह के प्रवाह में बह रहे हैं। प्रेम के प्रवाह और मोह के प्रवाह में काफी अंतर है। प्रेम में विकृति नहीं होता है, प्रेम में क्षुद्रता नहीं होती है, प्रेम में ईर्ष्या नहीं होती है, प्रेम में असद् भावनायें नहीं होती है प्रेम में हिंसा नहीं होती है। प्रेम सर्वोदय चाहता है, किसी का पतन नहीं चाहता है। जिसका मन प्रेम मय होता है वह सबको अपने समान देखता है। वह प्रतिदिन यही प्रार्थना करता है कि–

'हे प्रभो ! मेरे समस्त दोषों का नाश हो। मुझ में, सब प्राणियों में, सब आत्माओं में जो दोष आ गये हैं, जो विकार आ गये हैं उन्हें दूर करने की शक्ति मुझे भी दो और अन्य सब प्राणियों को भी दो।'

आज हमें कई दुर्व्यसन लग गये हैं। सवेरे बिस्तर में चाय चाहिये, पीने को सीगरेट चाहिये। इन बुरी आदतों को त्याग

हमारा यह मानव शरीर बड़ी बड़ी शक्तियों का केन्द्र है, अनन्त ऋद्धियों और सिद्धियों का खजाना है। इन शक्तियों को जागृत करने के बजाय हम अपना जीवन सांसारिक भोग विलास म खर्च करते हैं। हमारा आयुष्य तो सीमित है, उसमें एक क्षण भी कम ज्यादा नहीं हो सकता है। शंकराचार्यजी ने कहा है कि 'यह जीवन कमल पत्र पर पड़े हुए जल की बूंद के समान चंचल है।' जैन शास्त्र भी कहते हैं कि यह जीवन तृण की नोक पर स्थित ओस की बूंद की तरह है, हवा के एक झोंके में नष्ट हो जायगा।'

बंधुजनो! हमें अपने समय का सदुपयोग करना चाहिये नहीं तो 'बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताय' वाली कहावत चरितार्थ हो जायेगी। कर्मतंत्र कहता है कि 'मेरा नियन्त्रण सर्वोपरि है, संसार का कोई भी व्यक्ति या शक्ति मेरे चंगुल से नहीं निकल सकता है। कर्मतंत्र यह भी स्वीकार करता है कि मेरे ऊपर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य उसी में है जो भौतिकता के क्षेत्र को छोड़कर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करता है, अणु के प्रलोभन से निकल कर आत्मा को पहचानता है, मोह को छोड़कर ममत्व को त्यागता है। ऐसा महान व्यक्ति मेरे नियन्त्रण को समाप्त करके उस स्थिति को प्राप्त करता है, जिसे परमात्म स्थिति कहते हैं।

आज का युग क्रांति का युग है। चारों ओर क्रांति की चर्चा है। कहीं राजनीतिक क्रांतियां हो रही हैं, कहीं

करके अच्छी आदत डालनी चाहिये, जिनसे हमारे जीवन का विकास हो सके। हम सत्संग करने की, स्वाध्याय करने की प्रभु प्रार्थना करने की आदतें डालनी चाहिये। ऐसा निश्चय करना चाहिये कि जिस दिन मैं प्रभु स्मरण नहीं करूंगा, जिस दिन मैं स्वाध्याय नहीं करूंगा जिस दिन संतों की वाणी नहीं सुनूंगा भोजन नहीं करूंगा, पर आज हमारी क्या स्थिति है ? हम भूल गये पूजा को, भूल गये पाठ को, भूल गये संतों के दर्शन को और भूल गये गरीब को रोटी देने को। तुलसीदासजी कहते हैं कि—

तुलसी जग में आय के कर लीजे दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरि नाम॥

बहिनो! आप अपने शारीरिक श्रृंगार में कितना समय खर्च करती हैं। यहां तक कि पर्यूषण पर्व में भी, जबकि हमारा सारा समय जप, तप और सादा जीवन व्यतीत करने में खर्च होना चाहिये, आप गहने कपड़ों से लदी रहती हैं। धन्ना शालिभद्र की बात याद करिये। दोनों विहार करते हुए पुनः राजगृही नगरी में आये। उनके आगमन की बात सुनकर नगरवासी प्रसन्न हुए। माता और बहुएं स्वागत के लिये आकुल होकर स्नान श्रृंगार आदि में लग गईं। धन्ना तपस्या का पारणा करने के लिये वीर प्रभु से आज्ञा लेकर गोचरी के लिये नगर में जाते हैं। तपस्या के कृशकाय हुए धन्ना शालिभद्र घर में प्रवेश करते हैं, पर वहां तो सब स्नानागार में थीं,

यहां राह कैसे निकल सकती है? हम प्रभु को अपना हृदय, अपना सारा जीवन समर्पित कर दें और कर्तव्य समझ कर फलाशा त्याग कर अपना काम करते चले जांय। बस एक ही ध्यान रहे कि सेवक का धर्म अपने मालिक की इच्छानुसार कार्य करना है। जो सेवक अपने स्वामी की इच्छाओं का, उसके आदेशों का निष्ठा पूर्वक पालन करता है वही सच्चा सेवक होता है। हमें भी वितराग प्रभु द्वारा दर्शाये हुए मार्ग पर चलना है।

हम अपना अधिकांश समय व्यर्थ की बातों में सामाजिक उलझनों में नष्ट कर रहे हैं, इससे हमें बचना है। हमें निकम्मा जीवन व्यतीत नहीं करना है किन्तु हर क्षण का सदुपयोग करना है। वीतराग प्रभु ने गौतम गणधर को क्या उपदेश दिया? वे फर्माते हैं कि *'समयं गोयम ! मा पमायए'*— हे गौतम ! एक समय के लिये भी प्रमाद मत कर। गणधर गौतम तो महान चारित्रवान थे, प्रमाद रहित जीवन व्यतीत करते थे फिर भी भगवान ने उन्हें समय का महत्व समझाया। तो भला इस उपदेश का हमारे जीवन में कितना बड़ा महत्व है? कहा भी है—

काल करे सो आज कर, आज कर सो अब।
पल में परलय होयगा, बहुरि करेगा कब॥

भाइयों ! इस जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है, न मालूम यह चिराग कब गुल हो जाय, यह सफर न जाने कब खतम हो

मानवता नहीं होती, उनके जीवित रहने का भी कोई महत्व नहीं रहता और संसार से विदा होने का भी कोई महत्व नहीं होता। महान बनने के लिये धन की आवश्यकता नहीं होती, जेवरात की आवश्यकता नहीं होती, महलों की आवश्यकता नहीं होती। महान बनने के लिये विचारों की विशालता, एवं आचरण की पवित्रता चाहिये। हमें महान बनना हो, भगवान बनना हो तो अपने अंदर जो छिपी हुई शक्ति है उसे जागृत करना होगा, हृदय में छिपे हुए भगवान को पहचानना होगा। कहा भी है—

ज्यों नयन में पूतली त्यां खालिक घट मांय
मूरख नर जाने नहीं, बाहर ढूंढन जाय॥

हमें अगर बाहरी विकास करना है तो दिलों की दीवाल तोड़ो और आत्मिक विकास करना है तो कर्मों की दिवालें तोड़ो। जब दिलों की दिवाले टूटेगी तो हम दुनिया को काले धोले, धनी निर्धन, हिन्दू मुसलमान जैन, अजैन, छोटे बड़े के रूप में नहीं देखेंगे। दिलों की दीवालें के टूटते ही मैत्री और करुणा का भाव उदय होगा और वह फिर किसी भी प्राणी का अहित नहीं सोचेगा। हम जब अपने कर्मों की दीवाल राग द्वेष की दीवाले, तोड़ देंगे तो हम भगवान बन जायगे। क्षण भर की देर नही लगेगी।

याद रखिये! जहां चाह है, वहां राह है। जहां चाह न हो इच्छा न हो, जिज्ञासा न हो, भूख न हो, लक्ष्य न हो, उद्देश्य न हो

युग प्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरि

आज हम सब लोग वीतराग धर्म के, वीतराग शासन के एक प्रभावशाली नेता को श्रद्धांजलि देने के लिये यहां सम्मिलित हुये हैं। मेरे पूर्व परम पूज्य मुनिश्री मूलचन्दजी महाराज साहब, मदनलालजी जोशी तथा श्री प्रमसिंहजी ने विविध प्रकार से चरित्र नायक के उपलक्ष में बहुत कुछ कहा है, जिसको सुन कर मेरी आत्मा प्रफुल्लित हो रही है।

बन्धुजनो! मेरे विषय में जो कुछ मेरे को प्रोत्साहन देने के लिये कहा गया है, वह उनकी कृपा और एक बच्चे को अपना कर उसकी पीठ ठपराने के समान मानती हूँ। मैं उन शब्दों को बधाती हुई यह भावना करती हू कि प्रभु की दया से, गुरुदेव की

जाय ? यह धन दौलत, यह महल, यह भोग विलास के सारे साधन यहीं रह जायगे। खाली हाथ आये थे और खाली हाथ जावेंगे। इसलिये जितनी भी भलाई कर सकते हो करो, जितने कषायों को पतला कर सकते हो करो, जितना राग द्वेष त्याग सकते हो त्यागो जिससे भविष्य अंधकारमय न हो। याद रखिय यहा ननिहाल नहीं है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है —

सुकृत रूपी गहरा मरल लेलो माथे,
आगे नही छे घर नानी को रे चेतन ! ।
मत कर जोर जवानी को रे क्षणभर,
नहीं है भरोसा जिंदगानी को रे चेतन ! ॥

ध्यान रहे ! जहां संयम है वहां मानवता है और जहां असंयम है वहां दानवता। दशहराके दिन रावण का पुतला जलाया जाता है। क्यों ? इसलिये कि उसका जीवन असंयमी था। दूसरी ओर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की आरती उतारी जाती थी। क्यों ? इसलिये कि वे संयमी थे। आप सब भगवान राम बने, भगवान महावीर बने यही मेरी शुभ कामना है।

ॐ शांति शांति शांति

थ भाजखाना,
रतलाम २८ ९ ६३

ग प्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरि

आज हम सब लोग वीतराग धर्म के, वीतराग शासन के
क प्रभावशाली नेता को श्रद्धांजलि देने के लिये यहां सम्मिलित
ये हैं। मेरे पूर्व परम पूज्य मुनिश्री मूलचन्दजी महाराज साहब,
नलालजी जोशी तथा डा प्रेमसिंहजी ने विविध प्रकार से
रित्र नायक के उपलक्ष में बहुत कुछ कहा है, जिसको सुन कर
री आत्मा प्रफुल्लित हो रहा है।

बन्धुजनो! मेरे विषय में जो कुछ मेरे को प्रोत्साहन देने
लिये कहा गया है, वह उनकी कृपा और एक बच्चे को अपना
नका पीठ ठपकाने के समान मानती हूँ। मैं उन शब्दों को
ते हुए यह प्रार्थना करती हूं कि प्रभु की दया से, गुरुदेव की

जाय ? यह धन दौलत यह महल, यह भोग विलास के सारे साधन यहीं रह जायंगे। खाली हाथ आये थे और खाली हाथ जायेंगे। इसलिये जितनी भी भलाई कर सकते हो करो, जितने कषायों को पतला कर सकते हो करो, जितना राग द्वेष त्याग सकते हो त्यागो जिससे भविष्य अंधकारमय न हो। याद रखिये वहां ननिहाल नहीं है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है —

सुकृत रूपी गहरा मयल लेलो साथे,
आगे नहा छे घर नानी को रे चेतन ।।
मत कर जोर जवानी को रे घणमर,
नहीं है भरोसा जिंदगानी को रे चेतन ।।

' ध्यान रहे ' जहां सयम है वहां मानवता है और जहां असंयम है वहां दानवता। दशहराके दिन रावण का पुतला जलाया जाता है। क्यों ? इसलिये कि उसका जीवन असंयमी था। दूसरी और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की आरती उतारी जाती थी। क्यों ? इसलिये कि वे संयमी थे। आप सब भगवान राम बने, भगवान महावीर बने यही मेरी शुभ कामना है।

ॐ शांति शांति शांति

बजाजखाना,
रतलाम २८।१।६३

युग प्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरि

आज हम सब लोग वीतराग धर्म के, वीतराग शासन के एक प्रभावशाली नेता को श्रद्धांजलि देने के लिये यहां सम्मिलित हुवे हैं। मेरे पूर्व परम पूज्य मुनिश्री मूलचन्दजी महाराज साहब, मदनलालजी जोशी तथा डा प्रेमसिंहजी ने विविध प्रकार से चरित्र नायक के उपलक्ष में बहुत कुछ कहा है, जिसको सुन कर मेरा आत्मा प्रफुल्लित हो रही है।

बन्धुजनो! मेरे विषय में जो कुछ मेरे को प्रोत्साहन देने के लिये कहा गया है, वह उनकी कृपा और एक बच्चे को अपना कर उसकी पीठ ठपकाने के समान मानती हूँ। मैं उन शब्दों को वधाती हुई यह प्रार्थना करती हू कि प्रभु की दया से, गुरुदेव की

कृपा से, शासनदेव के आशीर्वाद से मेरा हृदय आप लोगों के कहने अनुसार बने और मैं इस ससार सागर से पार होने के लिये भगवान महावीर की सच्ची सेविका बनू ।

वीर प्रभु का सन्देश है कि "प्रत्येक प्राणी के साथ प्रेम करो। मानवता प्राप्त करने की यह पहली सीढी है पहला सोपान है। यदि मानव ने मानव हो क साथ प्रेम नही किया तो वह मानव नहीं है और न वह कभी मानवता के शिखर पर पहुच सकता है। वीतराग प्रभु के सन्देश में "सब भूतों के साथ मैत्री' कहा है जिसमें चर अचर एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के सब प्राणी आ जाते हैं। पशु हो या पक्षी, मानव हो या देव, पुरुष हो या स्त्री, चाहे किसी भी देश का हो, मजहब का हो, पंथ विशेष का हो, सबके साथ मैत्री भाव रक्खो, यही भगवान का सन्देश है। भगवान ने ' मित्ति मे सव्व भूएसु" कहा है न कि "मित्ति मे सव्व मानवेसु या भारतेसु' कहा है।

बन्धुओ ! अनन्त काल हो गये रखड़ते रखड़ते पर थका वट नहीं आई संख्यातात भव कर लिये ससार की गुलामी करते करते पर अभी तक घबराहट नहीं आई । अनन्त जन्म मरण कर लिये पर कभी दिल में खिन्नता नहीं आइ । नौ नौ महीने अन्धेरी कोठड़ी में, विष्टा के घर में यह जाव रह गया फिर भी घृणा नहा आई ? कहिये हम सम्यग दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि ? आप मन्दिर में हमेशा प्रार्थना बोलते हैं । "जय वीतराय' इस प्रार्थना में क्या शब्द आया है ? भयव भव-निव्वेओ' -हे

प्रभो ! मुझे अब निर्वेद दो। परन्तु अपने में अभी हो क्या रहा है? भवानन्द, विषयानन्द, पुद्गलानन्द, भोगानन्द, सम्माना-नन्द कितने आनन्द गिनाऊं? इन सभी प्रकार के आनन्दों ने हमें पक्षाधीन बना दिया है और असली आनन्द एक तरफ रह गया। भोग में इतने विलीन रम दिये हैं कि सही ध्यान तक पहुंचने का मन ही नहीं लगता है। इसलिए बन्धुओ ! अब निर्वेद पैदा करो। यही सम्यग दर्शन का पहला लक्षण है।

आज हम जिस महानुभाव की जयन्ती मना रहे हैं उनको आठ सौ वर्षों से अधिक हो गये हैं। आठ सौ ही क्या आठ हजार वर्ष भी हो जाव तो क्या हुआ? सूर्य का प्रकाश तो कभी जाता ही नहीं है। कोई भी दिन हो कोई भी संवत् हो सूर्य तो सदा प्रकाशमान रहता है। याद रखिये ! केवल एक जिनदत्तसूरि की बात नहीं है। इस शासन के प्रांगण में एक नहीं हजारों आचार्यों ने, मुनिराजों ने, हजारों साध्वियों ने, हजारों श्रावक श्राविकाओं ने अपना योग दिया है। कड़ी से कड़ी मिल कर आज तक यह शासन चल रहा है। शासन के प्रांगण में उन्नति करने, शासन को प्रकाश में लाने वाले जो भी आचार्य, साधु सन्त, मुनिराज हो गये हैं, मैं उन सब गच्छीय महापुरुषों को अन्तर आत्मा से नमस्कार करता हूँ। आज जो ढाई हजार वर्ष से जिन शासन की परम्परा चल रही है, इसका सारा श्रेय इन समस्त आचार्यों, मुनिराजों को है। अतएव बन्धुओ ! विशाल दृष्टिकोण अपनाओ। कभी किसी आचार्य या मुनिवर को दूसर

गच्छ या सम्प्रदाय का मान कर उनके लिये अनुचित शब्द निकाले तो याद रखना भव बन्धनों से छूटना तो दूर रहा, उल्टे भव बन्धन और बढ़ जायेंगे। अतः वन्दना करना हो तो करो न करना है तो मत करो, किन्तु अनादर किसी का भी मत करो।

जिस समय आचार्य जिनदत्तसूरि चमक रहे थे, मानव को ज्योति दिखा रहे थे, मांस भक्षण छुड़ा रहे थे, शराब छुड़ा रहे थे व्यभिचार की वृत्तियों को छुड़ा रहे थे, दानवता को भगा रहे थे उसी जमाने में एक दूसरा सूर्य हेमचन्द्राचार्य भी अपनी अद्भुत छटा के साथ चमक रहे थे। आचार्य हेमचन्द्राचार्य ने न केवल महाराज कुमारपाल को प्रतिबोध ही दिया बल्कि उनको प्राणदान भी दिया।

आचार्य जिनदत्तसूरि और आचार्य हेमचन्द्राचार्य ने ब्रह्मचर्य के बल पर, योग बल पर और साधना के बल पर ही जैन शासन की इतनी बड़ी सेवा की। दशवैकालिक सूत्र में कहा है—"*देवा वि तं नमसंति जस्स धम्मे सया मणो*" अर्थात् जिसका मन सदा धर्म में है उसको देवता भी नमन करते हैं। जो व्यक्ति धर्म में, नीति में, त्याग में, तप में, मानव मर्यादाओं में सदा स्थिर रहता है, मजबूत रहता है, संकटकाल में भी विचलित नहीं होता है, अनीति के मार्ग में कदम नहीं भरता है, ऐसे श्रावकों के चरणों में देवता भी नमन करते हैं, फिर भला मुनियों के चरणों में देवता आवें तो क्या बड़ी बात है। इतिहास बतलाता है कि कामदेव श्रावक, शिविराजा और राजा मेघरथ की

परीक्षा लेने के बाद देवताओं ने भी उनको नमन किया और उनकी प्रशंसा की। याद रखिये ! जो धर्म को नहीं छोड़ता है, धर्म कहता है कि मैं भी उसको तीन काल में भी नहीं छोड़ता, परन्तु यदि किसी ने मुझे तिलांजलि दे दी, या मुझे धक्का देकर निकाल दिया तो फिर मैं उसका संरक्षण कैसे कर सकता हूँ ? कहा भी है —

> एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति य ।
> शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥

एक मात्र धर्म ही ऐसा मित्र है जो प्राणी के मर जाने पर भी उसके साथ जाता है, बाकी सब तो इस शरीर के साथ नष्ट हो जाते हैं।

मधुजनो ! उस शताब्दी में एक ओर अठारह देशों में अमारि पटह बजाने वाला, अहिंसा धर्म को फैलाने वाला कुमारपाल राजा आचार्य हेमचन्द्राचार्य का शिष्य था जहां आचार्य हेमचन्द्राचार्य यहुं ओर धर्म का झण्डा फहरा रहे थे, दूसरी ओर सात मात राजाओं को प्रतिबोध देकर श्री जिनदत्तसूरि अहिंसा का झण्डा लेकर घूम रहे थे। भला जहां दो-दो समर्थ आचार्य महावीर का सन्देश गांव-गांव गुंजावें, अहिंसा की पताका चारों दिशाओं में लहरावें, उस शताब्दि की जाहो-जलाली की क्या बात ? जिधर देखो उधर अहिंसा के गीत गाये जाते थे।

जिन लोगों ने जैन धर्म अङ्गीकार करके, अहिंसा पालन का प्रन लिया, हिंसा न करने का संकल्प किया मांस मदिरा का त्याग किया, अनीति और दुराचार का मार्ग छोड़ा उन सभी व्यक्तियों के लिए आचार विचार के नियम बना कर आचार्य जिनदत्तसूरि ने उनको अलग-अलग जातियों और गोत्रों में बांध दिया, जैसे —पारख गालछा, नाहटा कोठारी धाड़ीवाल, सचेती कटारिया सेठिया, मसाली आदि। यद्यपि आज जाति प्रथा में विकृतियों का समावेश हो गया है फिर भी मूल में कितनी ही सस्कृतियां आज भी सुरक्षित हैं। इनकी स्थापना में जो आचार विचार की शुद्धता का मूल उद्देश्य था, वह आज भी कायम है।

जाति निर्माण में रत्न प्रभसूरि का भी प्रमुख स्थान है। ये भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की सन्तान परम्परा में हुए थे, बाद में भगवान महावीर की परम्परा में आ गये थे। आप यह तो जानते ही हैं कि जब नये तीर्थंकर होते हैं तो पुराने तीर्थंकर की परम्परा नव तीर्थङ्कर की परम्परा में विलीन हो जाती है। पार्श्वनाथ भगवान की परम्परा भगवान महावीर की परम्परा में विलीन हो गई। जब हमारे तीर्थङ्करों की परम्परायें मिल जाती हैं तब हम आपस में क्यों नहीं मिलें ? पार्श्वनाथ भगवान के शिष्य पचरंगी कपड़े पहनते थे और भगवान महावीर के शिष्य सफेद वस्त्र धारण करते थे। भगवान महावीर के शिष्य पांच महाव्रत धारण करते थे पर भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य चार

महाव्रत धारण करते थे। फिर भी उनमें आपस में कभी तकरार नहीं हुई। शास्त्रों में ऐसा विवरण मिलता है कि पार्श्वनाथ परंपरा के केशी गणधर और महावीर परंपरा के गौतम गणधर आपस में प्रेम पूर्वक मिले और एक दूसरे से जानकारी ली। पर वहाँ भी कटु शब्द तक नहीं बोला गया। बन्धुजनो ! यहाँ ही देखिए, मालवी पगड़ियें हैं, मारवाड़ी पगड़ियें हैं, सफेद काली टोपिया भी हैं और खुले सिर भी हैं पर हैं तो सब वीर प्रभु के अनुयायी। अतः हमें अपनी सारी शक्ति बाहरी मतभेदों को भुला कर आपसी सहयोग तथा आत्मिक विकास में लगा देना चाहिए। उपनिषद् में कहा भी है कि "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति"—सत्य एक ही है, उसे बुद्धिमान लोग कई नाम से पुकारते हैं।

दादा जिनदत्तसूरि का देहावसान आषाढ़ सुदी ११ के दिन हुआ। जातियों के संस्थापक होने के नाते इनकी महिमा ज्यादा फैली हुई है। इन्हें ओसवाल, पोरवाड़, खण्डेलवाल सभी मानते हैं। जयपुर में स्थानकवासी, तेरापन्थी, श्रीमाल भाई इनको अपनी जाति के संस्थापक के नाते मानते हैं और सोमवार, पूर्णिमा को दादावाड़ी जाते हैं। दादा जिनदत्तसूरि के जीवन की एक और विशिष्टता यह है कि इनके जीवन में यौगिक साधना, आत्मिक साधना, ज्ञान दर्शन चारित्र की साधना इतनी प्रबल और समर्थ हो गई थी कि आपने शासन की इतनी प्रभावनायें की, अनेक राजाओं को प्रतिबोध किया, फिर भी आत्मा का

क्षेत्र इतना गहरा किया, जीवन में इतनी सावधानी रखी कि एकावतारी हो गये। यहां रतलाम में भी कोटा वाले के बगीचे में दादा जिनदत्तसूरि की प्रतिमा है। मैं वहीं से प्रार्थना करके आ रही हूँ कि हे प्रभो! आप एकावतारी बन गये तो कम से कम मुझे तो अल्पावतारी बना दो।

आज एक गच्छ विशेष के आचार्य की जयन्ती के अवसर पर हमारे पूज्य मुनि मूलचन्दजी महाराज साहब, अन्य सन्त एवं सतियाजी तथा तपागच्छ की साध्वीजी पधारें और इस विशाल सभा में सभी समाज के, सभी धर्मों के भाई बहिन उपस्थित हैं। यह देख कर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। आज संगठन का युग है, एक दूसरे के नजदीक आने का युग है। हम अपनी अपनी क्रियायें करें परन्तु यह नहीं मान लें कि हमारी क्रिया ही मोक्ष दिलाने वाली है। मैं तो सदा प्रभु के चरणों में, गुरुदेव के चरणों में यही प्रार्थना करती हू कि हे प्रभो! जो कुछ भी मैं क्रिया करू वह आपकी आज्ञानुसार सफल हो। जो कुछ आज्ञा विरुद्ध हो उसके लिए मिथ्या दुष्कृत देता हू। मुझे आग्रह नहीं है कि मेरी क्रिया ही मोक्ष देने वाली है। गेहू के आटे की पूरी बनाओ, फुलका बनाओ, शक्करपारा बनाओ या टिक्की और थूली बनाओ, पर गेहू का गेहूँपना तो वही रहेगा। वह तो नहीं बदलेगा।

हम सब एक हैं, हम सब सर्व धर्म समन्वय का पाठ पढ़े और दूसरों को पढ़ावें। क्यों जैन वैष्णव द्वेष कर, क्यों हिन्दु

मुस्लिम द्वेष करें, क्यों खरतरगच्छ-तपागच्छ वाले द्वेष करें, क्यों मन्दिर स्थानक वाले द्वेष करें, क्यों श्वेताम्बर दिगम्बर में द्वेष हो और क्यों मानव मानव में द्वेष हो ? नहीं-नहीं यह जीवन, यह मानव जीवन द्वेष करने के लिये नहीं है । मानव जीवन और फिर भारतवर्ष में जन्म होना बड़ा दुर्लभ है। कहा है —

"दुर्लभ भारते जन्म मानुष्य तत्र दुर्लभ ।"

भारत देश में जन्म पाना दुर्लभ है और उसमें भी मनुष्य जन्म तो और भी दुलभ है ।

बन्धुओ ! जो कुछ भी कूड़ा कचरा अज्ञानता से हमारे दिलों में इकट्ठा हो गया है उसे अब प्रेम की झाडू लेकर निकाल दें और इस हृदय को ऐसा निर्मल बनालें कि हमें मानव मानव में भेद नहीं दिखे, प्राणी प्राणी में भेद न दिखे और सवत्र ही प्रेम और मैत्री की धारा बहे तथा "आत्मवत् सर्व भूतेषु" अपनी आत्मा के समान सब की आत्मा को समझें।

ॐ शांति शांति शांति

रतलाम २ ७ ६३

'सा विद्या या विमुक्तये'

शिक्षा मानव का भोजन है। जैसे शरीर का विकास भोजन के बिना सम्भव नहीं, वैसे ही मानव का चरित्र बिना शिक्षा के विकसित नहीं हो सकता है। शिक्षा मानव में सद्-असद् विवेक बुद्धि को जागृत करती है। बुद्धिवादी मानव बंधन स्वीकार नहीं करता है परन्तु शिक्षा मानव के अविवेक पूर्ण कार्यों पर प्रतिबंध लगाती है। शिक्षा तभी सफल कहलाती है जब उसके फलस्वरूप जीवन में सुसंस्कार उत्पन्न होते हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल दिमागी शक्ति का विकास ही नहीं है दिमाग के साथ मनुष्य के दिल और देह का भी विकास होना चाहिये कहा भी है—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ॥

विद्या मनुष्य को विनय देता है, विनीत होने से वह योग्य बनता है, योग्यता से धन प्राप्त होता है, धन से धर्म होता है और धर्म के फलस्वरूप सुख की प्राप्ति होती है।

एक छोटी सी कहानी याद आ गई। मूसलधार पानी बरस रहा था, सड़क पर भी पानी हो गया था। एक विद्यार्थी ने देखा कि सड़क के एक किनारे पानी के गड्ढे में एक बिच्छू तड़फ रहा है। फौरन ही उसके मन में विवेक बुद्धि जागृत हुई मन में दया उत्पन्न हुई और उसने बिच्छू को पानी से बाहर निकालने का निश्चय किया। जितनी बार वह बिच्छू को पकड़ने का प्रयत्न करता उतनी बार बिच्छू उसे डंक मार देता। विद्यार्थी को असहनीय पीड़ा हो रही थी, फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी और अंत में उसने बिच्छू को पानी से बाहर निकाल कर उसके प्राणों की रक्षा करके ही दम लिया। सज्जन व्यक्ति दुर्जनों की कुटिलता को भूल कर अपनी सज्जनता का सदा परिचय देता है। जिस शिक्षा से दुखी प्राणी को देख कर मन में दया उत्पन्न होती है, उसके कष्ट निवारण के लिये मन तड़फ उठता है वही सच्ची शिक्षा है।

गुलाब के फूल का जीवन काँटों में बीतता है फिर भी वह अपना स्वाभाविक गुण नहीं छोड़ता है। वह तो अपनी

सुगंध बिखरता रहता है। सच्चा मानव वही है जो संसार के कटुक मीठे अनुभव होने पर भी कर्तव्य रूपी सुगंध को चारों तरफ फैलाता रहता है। जिस मानव को अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है वह जीते जी मृतक के समान है। राष्ट्रपिता गांधीजी का जीवन हमें कर्तव्य पालन की बेजोड़ शिक्षा देता है। सारी सुख सामग्रियों का त्याग कर उन्होंने समाज के पिछड़े हुए, दुतकारे हुए प्राणियों के उद्धार का बोझा उठा लिया। भारत की करोड़ों गरीब जनता का जैसा रूखा सूखा भोजन मिलता है, तन ढकने को जितना वस्त्र मिलता है उतना ही भोजन करके, वैसा ही सादा तन ढकने मात्र का कपड़ा पहन कर वे दरिद्र नारायण की सेवा में लग गये। भारत माता की गुलामी की जंजीरों को तोड़कर उन्होंने देश को स्वतन्त्र कराया, पर सत्ता से वे सदैव दूर रहे। धार्मिक विद्वेष और धर्मान्धता के विरुद्ध वे निहत्थे नोआखाली की आग में कूद पड़े और आखिर मानवता की वेदी पर गोलियां खाकर उन्होंने अपना बलिदान दे दिया। कर्तव्य निष्ठा का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

शिक्षा से मानव नम्र विनीत और स्वतन्त्र बनता है कहा भी है-'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वही है जो हमें मुक्ति दिलाती है। जीवन में हम कदाग्रह, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, अज्ञान तथा अनेक प्रकार के कुसंस्कारों व बंधनों में जकड़े हुए हैं। शिक्षा हमें इन बंधनों से मुक्त कराने में सहायक होता है,

हमें उदार बनाती है। इसके साथ ही हमें विद्या आत्म कल्याण का मार्ग भी दिखाती है।

अगर किसी सुवर्णकार के पास कोई व्यक्ति आभूषण बनाने के लिये सुवर्ण लाकर देता है तो वह सुवर्णकार उस सोने को बड़ा हिफाजत से रखता है और अपनी सारी कारीगरी उस आभूषण को सुन्दर से सुन्दर बनाने में लगा देता है। इसी प्रकार शिक्षक, गुरुजन भी सुवर्णकार हैं और शिष्य शुद्ध सोना है। पर इस सोने में एक विशेषता यह है कि यह सोना चैतन्य है जड़ नहीं। गुरुजनों को चाहिये कि वे अपने शिष्यों को ऐसी शिक्षा दें कि वे अपने गुरुजन, माता पिता तथा बुजुर्गों का आदर करना सीखें, सब धर्मों का सन्मान करना सीखें, सब प्राणियों पर दया प्रेम और मैत्री भाव रखने तथा कर्तव्यनिष्ठ बन कर देश के आदर्श नागरिक बनें।

अक्सर देखा जाता है कि आज के विद्यार्थी भारतीय संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति के विकृत रूप का अंधानुकरण करते हैं। नतीजा यह होता है कि उनके चरित्र की नींव आरम्भ से ही कच्ची और कमजोर रह जाती है। विद्यार्थी बंधुओ! आप अश्लील गीत सुनने और गाने के बजाय, सस्ते उपन्यास पढ़ने के बजाय, राष्ट्र भक्ति के ईश्वर भक्ति के, गीत गावें और देश विदेश के महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़कर उनसे शिक्षा ग्रहण करें। अपने जीवन के विकास का आप एक लक्ष्य बनालें और उस मंजिल तक पहुंचने के लिये निरंतर प्रयास

करते जांय। असफलता से कभी नहीं घबरावें। असफलता ही सफलता की कुंजी है।

विद्यार्थियो! आज आप अपने को पंगु अनुभव करते हो। घर का काम धंधा करना, श्रम करना आप अपनी शान के खिलाफ समझते हो। 'माथे से पसीना बरसे और हाथ से कमाना टपके इस भारतीय आदर्श को आज आप भूल गये हैं। याद रखिये, देश के नव निर्माण की इस पवित्र बेला में सफेद झक कपड़े पहनने वालों के स्थान पर मिट्टी से सने हुए हाथ वालों को आज ज्यादा प्रतिष्ठा है ज्यादा सम्मान है। मुझे विश्वास है आप श्रम से शरमायेंगे नहीं बल्कि उसे पुरुषोचित आभूषण समझ कर धारण करेंगे।

बन्धुओ! संतों की इस भूमि में, त्याग और तपस्या के इस देश में, इस वैज्ञानिक युग में आपने जन्म पाया है। आज मानव ने हवा तूफान और समुद्र पर विजय प्राप्त की है। जड़ अणु में छिपी शक्ति को प्रकट करके, विध्वंसकारी बम निर्माण करके अपने विनाश को सज सजाई है। दूसरी ओर उसी अणु शक्ति का प्रयोग करके विश्व की गरीबी, दरिद्रता और बीमारियों को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसे युग में आपको भी भौतिक उन्नति करके देश को समृद्ध करना है, तथा साथ ही साथ अपने अन्दर छिपे हुए राम को प्रकट करना है, उस आत्म शक्ति को जागृत करना है कि जिसके जागृत होने पर हम मानवता की सेवा करते हुए आत्म-कल्याण कर सकेंगे।

याद रखिये आपको असत्य मे से सत्य में जाना है, अंधेरे से प्रकाश में जाना है विकार में से निर्विकार में जाना है। आपको मेरा यही आशीर्वाद है कि आप एक आदर्श विद्यार्थी बने, आदर्श माता पिता बने, आदर्श नागरिक बने और मानवता के पुजारी बने।

ॐ शांति शांति शांति

रतलाम ७-७ ६३

कर्त्तव्य की सुगन्ध

संसार वाटिका में विविध प्रकार के पुष्प खिलते हैं, कुछ सुगन्ध-युक्त होते हैं और कुछ कागज के फूलों के समान सुन्दर पर सुगन्ध हीन होते हैं। मानव वे पुष्प हैं जो अपनी सुगन्ध से विश्व को महका देते हैं। पुष्प की सुगन्ध तो पुष्प के मुरझा जाने के बाद समाप्त हो जाती है पर मानव की महक उसकी मृत्यु के बाद भी ताजी रहती है।

भगवान ऋषभदेव, भगवान महावीर, भगवान रामचन्द्र, राजा हरिश्चन्द्र, महासती चन्दनबाला, भामाशाह आदि को हुए हजारों सैंकड़ों वर्ष हुए फिर भी उनके नाम अमर हैं। यदि हमने कर्त्तव्य की सुगन्ध, जनकल्याण भावना की सुगन्ध परोपकार की

सुगन्ध, आत्म कल्याण का सुगन्ध अपने जीवन में पैदा करली तो हमारी कीर्ति सौरभ कभी समाप्त नहीं होगी। किसी कवि ने कहा है —

> सूरत से कीरत बड़ी बिना पङ्ख उड़ जाय।
> सूरत तो जल जात है, कीरत कबहुँ न जाय॥

कीर्ति बिना पङ्ख के उड़ती है। अगर आपने कोई महान कार्य किया, सेवा की है तो चन्द मिनिटों में आपके कार्य की कीर्ति विश्व के कौने-कौने में फैल जाता है।

भगवान महावीर के समवसरण में चौदह विद्यानों के ज्ञाता प इन्द्रभूति अपने पांच सौ शिष्यों के साथ आये और प्रभु के सामने आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में अपनी शङ्कायें रक्खी भगवान महावीर ने उनके ही धर्म शास्त्रों के वाक्यों से उनका संशय दूर कर दिया। उन्होंने कहा कि हे इन्द्रभूति ! तुम्हारे शास्त्रों में कहा है कि *"विज्ञानघनो अयं आत्मा"*—यह आत्मा विज्ञान घन है। जब बादल भारी होते हैं तो हम कहते हैं कि बादल घना है, जब बगीचा काफी हरा और पेड़ काफी पास पास हो तो कहते हैं कि यह बगीचा घना है। जहां पर प्रचुरता हो, अत्यधिकता हो, वहां घन शब्द का प्रयोग होता है। तो आत्मा विज्ञान घन है इसका अर्थ हुआ कि जो विज्ञान का पुंज है वही आत्मा है। हमारा यह आत्मा विज्ञान घन है, ज्योति पुंज है, सच्चिदानन्द है। परन्तु हम इस आत्मा पर लगे हुए आवरणों

को हटा कर उसके शुद्ध स्वरूप को प्रकटाने के बजाय अपने जीवन को व्यर्थ के तर्क वितर्क और व्यर्थ की जल्पनाओं में डाल कर अपना अनमोल समय बरबाद कर रहे हैं। जैसे नल में टंकी से पानी आता है और यदि टंकी को बंद कर दिया जाय तो नल खाली रहता है। वैसे ही व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के अभाव में समाज और राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं है। इसलिये हमें अपनी आत्मिक उन्नति, आत्मिक विकास के लिये अधिक से अधिक प्रयास करना चाहिए। कहावत है—"*आरवाम मन्सूर मे सूखी*।" यह सोचना कि कल करेंगे, परसों करेंगे, हमें अपने आपको भूलभुलैया में डालना है। कवि ने कहा है—

काल करै सो आज कर आज करै सो अब।
पल में परलय होयगा, बहुरि करोगे कब॥

मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—व्यर्थ के विचारक और साधक। व्यर्थ के विचारक वे हैं जो केवल विचार ही करते हैं, चिंता करते हैं पर करते धरते कुछ नहीं, परन्तु साधक वह है जो विचारों को कार्य रूप में परिणत करता है। साधक का लक्ष्य होता है कार्य की सिद्धि परम ज्योति में विलीन होना, परमात्मा बनना। साधक भले हो हिन्दू हो या मुस्लिम, जैन हो या वैष्णव लक्ष्य सबका एक है—ईश्वर बनना नारायण बनना, खुदा को पा लेना। इस लक्ष्य तक पहुँचने के मार्ग अनेक हो सकते हैं, साधन अनेक हो सकते हैं। साधक अपनी आत्म शक्ति और स्वभाव के अनुसार मार्ग और साधन चुनता है और कोई जल्दी

और काई देर से लक्ष्य तक पहुँचता है । साधक के मन, वचन और वाणी में भेद नहीं होता है। कहा भी है—

मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ॥

महात्मा या साधक वही होता है जो जैसा सोचता है, वैसा बोलता है और वैसा ही करता है, पर दुरात्मा वह है जो सोचता कुछ है, बोलता कुछ है और करता कुछ है।

मनुष्य दीपक के समान है, जिस प्रकार पुज के सपर्क में आने से वह आलोकित हो जाता है । हमारे जीवन में प्रकाश पुज के रूप में सत आते हैं और हम प्रकाश दे जाते हैं उनका साहित्य भी आदित्य के समान हमारे अज्ञान रूपी अधकार को दूर कर देता है । सतों की वाणी को सुनकर उनके साहित्य को पढ़कर जब हमारे मन में कर्मों के आवरण को हटाने की, कषायों को पतले करने की भावना उत्पन्न हो तो जीवन में परोपकार करने का और तपस्या करने का, लालसाओं और इच्छाओं को शात करने का, सम्यग् ज्ञान प्राप्त करने के हेतु स्वाध्याय करने का, जड चेतन का भेद समझने का जोश पैदा करो । आनन्दघनजी की यह बात याद रखो कि *'कथनि कथे सहु कोई, करनी अति दुर्लभ होई ।'*

एक ... बात है कि अकबर प्रतिबोधक

जिनचद्र सुरि विचरण करते हुए अहमदाबाद पधारे। आचार्य श्री के पदार्पण से हर्ष की लहर दौड़ गई। आचार्य श्री के दर्शनों को जनता उमड़ पड़ी। कहा भी है—*संत समागम हरि-कथा तुलसी दुलम होय।'* आचार्य श्री के दर्शनार्थ आई जन मडली में सोमा और शिवा नाम के दो भाइ भी थे। जब सब लोग दर्शन करके चले गये तो दोनों भाइयों ने आचार्य श्री के निकट आकर वदन किया। उनके चेहरों पर उदासी झलक रही थी। आचार्य श्री ने पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है, क्या काम करते हो। उत्तर में निवेदन किया कि हम सोमा और शिवा नाम के दो भाई है और मजदूरी करके पेट भरते हैं पर पूरी पेट भराइ नहीं होती है।

बधुओ! गरीबी बहुत बुरी होती है। हम गोचरी को जाते हैं तो कहीं कहीं तो घर की स्थिति देख कर आंसू निकल जाते हैं। समाज में एक तरफ तो धन दौलत की कमी नहीं है और गरीबों को एक टाइम भी भोजन मिलना मुश्किल हो रहा है। समाज की यह विषमता मिटाना श्रीमंतों का फर्ज है।

अष्टाग निमित्त के ज्ञाता आचार्य श्री ने उन्हें गरीब जान कर ठुकराया नहीं बल्कि स्नेह से कहा कि भाई घबराओ मत, सुख दुख तो चलती फिरती छाया है गरीबी और अमीरी आती जाती रहती है। घबराने की जरुरत नहीं है, सब आनद होगा। आचार्य श्री के मुख से उनके भावी का शब्द निकल गया। गुरुदेव के वचन सुनकर दोनों भाइयों को बड़ी शान्ति

हुई। कुछ दिन बाद उन्होंने ककड़ी और मतीरे का व्यापार शुरू किया, उन्हें धीरे धीरे सफलता मिलती गई। एक बार उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में ककड़ी और मतीरे खरीदे। उनका पुण्योदय होना था, किस्मत से शाही फौज खम्भात से उधर आ निकली गर्मी का मौसम था मुंह मांगे दाम देकर सारी ककड़िया और मतीरे खरीद लिये। धीरे धीरे इन्होंने व्यापार बढ़ाया और अच्छी आमदनी होने लगी। सिद्धाचल पर्वत पर खरतर गच्छ का पहली टोंक इन्हीं भाइयों की बनाई हुई है जो शिवा-सोमा की टोंक व चौमुखाजी की टोंक के नाम से विख्यात है।

जैसे जैसे व्यापार में लाभ अधिक होने लगा, इनके जीवन में नैतिकता और धार्मिकता की जड़े गहरी होती गईं। एक दिन की बात है कि एक व्यक्ति साठ हजार रूपयों की हुंडी लेकर आया। मुनीमों ने सब खाते देख लिये पर इनका खाता नहीं मिला। उन्होंने सारी स्थिति सेठ के सामने रक्खी। सेठ साहब ने हुँडी को बड़ी देर तक देखा और फिर रकम दे देने के आदेश दे दिये। रकम तो दे दी गई पर उन्होंने सेठ सा के पुत्र के कान भर दिये। पुत्र ने विनय पूर्वक सेठ सा से हुंडी के विषय में पूछ लिया। सेठ ने कहा बेटा इस हुंडी को देखो। पुत्र के कुछ समझ में नहीं आया। तब सेठ ने समझाया कि देखो इस हुंडी पर ये आंसू के धब्बे हैं। किसी खानदानी पुरुष ने मुसीबत में आकर हम से मदद मांगी है। अब तुम्हीं बताओ कि अगर हमने उसकी मदद करके अपनी संपत्ति का सदुपयोग

किया या नहीं ? पुत्र बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला पिताजी आज हमारे धन्य भाग है कि हमें किसी की मदद करने का अवसर प्राप्त हुआ।

कुछ समय बाद एक व्यक्ति दुकान पर आया और सेठ सा० के सामने साठ हजार के नोट रख दिये। सेठ ने मुनीम को रकम जमा करने को कहा। उस आगतुक सज्जन ने कहा कि सेठ साहब आपके यहां मेरा कोई खाता नहीं मिलेगा। याद करिये कुछ महिने पहले मैंने आपके पास साठ हजार रूपयो की एक हुँडी भेजी थी। आपने उस समय रूपये देकर मेरी लाज रख ली थी। वही रकम मैं आज लोटाने आया हूँ। मैं आपका इसके लिये जीवन भर ऋणी रहुगा। सेठ ने उठ कर उसे गले लगाया और कहा कि मैंने तो आपको भाई समझ कर यह रकम दी थी, अब वापस कैसे ले सकता हूँ। आखिर जब सेठ नहीं माने तो आगन्तुक सज्जन ने कहा कि इस रकम का एक फड बना दिया जावे और इस रकम का उपयोग मेरे जैसे मुसीबत में फसे हुये व्यक्तियो की सहायता करने में किया जावे। सेठ सा० प्रसन्न हो गये और उतनी ही रकम और अपनी तरफ से मिला कर फड कायम कर दिया। धन्य हो यह उदारता। धन का इससे अच्छा सदुपयोग क्या हो सकता है ?

आज रक्षा-बंधन का पर्व है। प्राचीन काल में अगर किसी स्त्री पर संकट आता था तब वह किसी समर्थ व्यक्ति के

योगेश्वर श्रीकृष्ण

जिस प्रकार सागर में करोड़ों कंकर भी होते हैं और बहुमूल्य रत्न भी होते हैं, उसी प्रकार इस संसार के आवागमन के क्रम में करोड़ों साधारण व्यक्ति आते जाते रहते हैं तथा कभी कभी ऐसे महापुरुष भी उत्पन्न होते हैं जो अपनी विशिष्टता के कारण अमर हो जाते हैं और इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। ऐसे ही एक विशिष्ट महापुरुष की जयंती हम आज मना रहे हैं। संसार में लंबे समय के बाद संस्कृति में विकृतियां आती रहती हैं और जब जब संस्कृतियों में विकृतियां आती हैं तो उन विकृतियों का नाश करने के लिये अवतारी पुरुष जन्म लेते हैं। आज की जयंती के चरित्र नायक भगवान श्रीकृष्ण भी उन उच्च आत्माओं में से एक हैं।

व्यक्ति अमर नहीं होते हैं, उनका व्यक्तित्व अमर होता है। हमारा व्यक्तित्व बीज रूप से आत्मा में पड़ा है। इस बीज का विकास सभी में समान रूप में नहीं होता है। गीता मानती है कि ईश्वर का अंश सभी जीवों में है, जैन दर्शन कहता है कि सभी जीवों में सिद्ध स्वरूप विद्यमान है, मुसलमान भाई कहते हैं सब में खुदा का नूर है। कुछ भी कह लो वह शक्ति सब प्राणियों में है। प्रश्न केवल उस शक्ति की अभिव्यक्ति का है। जो विशिष्ट पुरुष हैं महापुरुष हैं उनमें वह छिपी शक्ति प्रकट होती है। विशिष्ट पुरुष दो प्रकार के होते हैं एक वे जो जन्म-जात होते हैं और दूसरे वे जिनके जीवन का पुरुषार्थ द्वारा विकास होता है और जो अपने कर्मों द्वारा विशिष्टता प्राप्त करते हैं। महापुरुष सभी देशों में सभी धर्मों में और सभी जातियों में होते हैं। जो महापुरुष होते हैं उनकी नजर व्यक्ति के लिंग या शारीरिक सौंदर्य की ओर नहीं होती है बल्कि उनकी दृष्टि तो उन व्यक्तियों की आत्मा की तरफ होती है। वे भीतर झांक कर आत्माओं की निर्मलता को देखते हैं और कहीं धूल लगी नजर आई हो तो उसे साफ करने का प्रयत्न करते हैं। अतएव सभी महापुरुष हमारे वंदनीय हैं।

बंधुओ! महापुरुष किसी एक देश के नहीं होते, वे किसी एक धर्म या समाज के नहीं होते। वे तो सारे विश्व के होते हैं सारा विश्व उनका होता है। हमें सब धर्म सम भाव रखके सभी महापुरुषों को आदर पूर्वक नमन करना चाहिये। आप सरयूजा

भी खाते हैं और नारंगी भी खाते हैं। खरबूजे के बाहर के छिलके पर तो फांके दिखती हैं पर काटने पर अंदर से सारा एक होता है। नारंगी बाहर से एक दिखती है पर अंदर से उसकी अनेक फांके होती हैं। अपन भी जीवन में खरबूजा बने, नारंगी नहीं।

भाइयो! ऐतिहासिक महाभारत का युद्ध तो कौरव पांडवों के बीच कुरुक्षेत्र में एक बार ही हुआ था, परन्तु हमारे हृदय में कौरव पांडव रूपी जो असद् और सद् प्रवृत्तियाँ हैं, उनका युद्ध हर समय, प्रतिक्षण होता रहता है। हमारा यह निरंतर प्रयास रहना चाहिये कि हमारे हृदय में हो रहे इस आंतरिक युद्ध में सद् प्रवृत्तियों का विजय होवे और आसुरी वृत्तियों का दमन हो। महाभारत के युद्ध में पांडवों के धर्म पक्ष के साथ योगीराज श्रीकृष्ण थे, इसलिये सैन्य बल कम होते हुए भी पांडवों की विजय हुई। गीता में कहा है —

> यत्र योगेश्वर कृष्ण यत्र पार्थो धनुर्धर. ।
> तत्र श्री विजयी भूति र्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण है, और जहां धनुर्धारी अर्जुन है, वहाँ श्री (सौभाग्य) विजय, कल्याण और नीति (नैतिकता) अवश्य रहती है।

धर्म का पक्ष पाशविक बल में भले ही कम हो पर आत्म शक्ति के कारण यश उसी को मिलता है।

महान होने पर भी भगवान श्रीकृष्ण बड़े सरल और नम्र स्वभाव के थे। माता पिता के भक्त थे और गरीबों के मित्र थे। सादगी और गरीबी तथा अमीरी में समानता का पाठ तो उन्होंने बचपन में ही पढ़ा था। आपको यह तो याद ही होगा कि उज्जैन के सांदीपन ऋषि के आश्रम में श्रीकृष्ण ने विद्याभ्यास किया था। उस आश्रम में श्रीकृष्ण जैसे राजकुमार भी पढ़ते थे तो सुदामा जैसे गरीब ब्राह्मण भी पढ़ते थे। सबका रहना, खाना, पढ़ना एक समान होता था। छोटे बड़े किसी का भेद नहीं था। कहां उस समय की कम खर्चीली शिक्षा और कहां आज का महा खर्चीला शिक्षा। हजारों रूपये बालकों की शिक्षा में खर्च करने पड़ते हैं फिर भी आज वैसी सक्रिय एवं संस्कृति पोषक शिक्षा नहीं मिलती है। आज गुरु शिष्या के संबंधों में कटुता पाई जाती है। आज गुरुओं से विद्यार्थियों को प्रेम व सहृदयता नहीं मिलती है और न शिष्यों में विनय, आदर और नम्रता का भाव पाया जाता है। यही कारण है कि आजकल अध्यापकों एवं छात्रों में विरोधी भाव कभी कभी उग्र रूप से देखने को मिलता है।

बचपन का गुरुभाई गरीब सुदामा जब श्रीकृष्ण से मिलने जाता है तो उसका आगमन सुनते ही वे भूल जाते हैं कि मैं एक महान व्यक्ति हूं राजा हूँ। सिंहासन से उतर कर, दौड़ कर मित्र को गले लगाते हैं और दारिद्र्य वेश धारी सुदामा को बड़े प्यार के साथ लाकर अपने सिंहासन पर बिठाते

हैं। मित्रता का इससे अनुपम उदाहरण और कहाँ देखने को मिलेगा?

महाराजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे थे। श्रीकृष्ण भी आमंत्रित थे। सभा लोगों को काम बाँटा जा रहा था। श्रीकृष्ण ने कहा कि सब लोग अपनी अपनी रुचि का काम ले लें, जो कार्य बच जायगा वह मैं ले लूँगा। उनके हिस्से में पाँव धोने का काम आया जिसे उन्होंने बड़े प्यार के साथ पूरा किया और सेवा धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ाई। सेवा भावी व्यक्ति के लिये कोई भी काम छोटा नहीं होता, यह उन्होंने अपने जीवन में करके बतलाया।

बन्धुओ! श्रीकृष्ण महान कर्मयोगी थे। संसार के संरक्षण तथा आत्म संरक्षण करने में वे पूरे सावधान थे। संसार के हित के लिये, लोक संग्रह की भावना से वे आसक्ति रहित होकर कर्तव्य करते थे। अनासक्त योग ही मोक्ष योग है। अनासक्त ही सच्चा समत्व पा सकता है और समत्व पाने वाला ही योगी कहलाता है। भगवद्गीता में कहा है कि *'समत्वं योग उच्यते।'* समत्व का पाठ जिसने नहीं पढ़ा वह कभी भी पंडित, ज्ञानी, साधु एवं योगी नहीं बन सकता है। अपने जीवन में तो उन्होंने संसार का महान उपकार किया ही पर भगवान श्रीकृष्ण ने गीता जैसा अमूल्य खजाना संसार को देकर संसार का सदा के लिये महान उपकार किया है।

माइयो! गीता में आत्मा के संबंध में कहा है कि '*अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे*'-यह (आत्मा) अजन्मा, शाश्वत, नित्य और प्राचीन है। शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मरती है। जैन आगम भी आत्मा के स्वरूप के संबंध में यही बात इन शब्दों में कहते हैं कि '*नो इन्दियगेज्झ अमुत्त भावा, अमुत्त भावा विअ होइ निच्चो*'— आत्मा इन्द्रियों द्वारा जाना नहीं जा सकता है क्योंकि यह अमूर्त है। अमूर्त होने से यह नित्य भी है।

बंधुजनो! जड़ और चेतन का अंतर समझो। यह आत्मा चेतन है और शरीर जड़ है पुद्गल है। यह आत्मा जाता है और शरीर जलता है। इस संबंध में गीता का कथन है कि-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे कोई व्यक्ति फटे पुराने कपड़ों को उतार देता है और दूसरे नये कपड़े पहन लेता है उसी प्रकार यह शरीर धारण करने वाली आत्मा जीर्ण शीर्ण शरीरों का त्याग कर अन्य नये शरीरों को धारण कर लेती है।

बंधुओं! उत्तराध्ययन सूत्र में कहा कि-

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य,।
अप्पा मित्तममित्तं च सुप्पट्ठिओ दुपट्ठिओ॥

आत्मा ही सुख दुःख का जनक है और आत्मा ही उसका विनाशक है। सदाचारी सन्मार्ग पर लगा हुआ आत्मा अपना मित्र है और कुमार्ग पर लगा दुराचारी आत्मा ही अपना शत्रु है।

धम्मपद में भगवान बुद्ध भी कहते हैं कि *'अत्ताहि अत्तनो नाथो'*-आत्मा ही आत्मा का स्वामी है। गीता म भी यही बात इन शब्दों म कही गई है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

मनुष्य को चाहिये कि वह अपने आपको ऊपर उठावे, वह अपने आपको नीचे न गिरावे क्योंकि आत्मा ही अपना मित्र है और आत्मा ही अपना शत्रु है।

भाइयो ! ईश्वर किसी के पाप पुण्य को अपने ऊपर नहीं लेता है। अज्ञान के कारण ही लोग भले-बुरे फल को ईश्वर के साथ जोड़ते हैं। गीता में इस सम्बन्धमें स्पष्ट बतलाया गया है कि-

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्य चित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

ईश्वर लोगों के न कर्तापन को, न कर्मों को और न कर्मों के फल के संयोग को निर्माण करता है। स्वभाव ही सब कुछ करता है। सर्वव्यापी परमेश्वर न किसी के पाप का और न किसी के पुण्य का लेता है। अज्ञान से ज्ञान आच्छादित हुआ है इस कारण प्राणी मोहित होते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर फरमाते हैं कि—

एगया देवलोगेसु नरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं अहाकम्मेहिं गच्छइ ॥

आत्मा अपने किये हुए कर्म के अनुसार कभी देवलोकों में, कभी नरकों में और कभी असुरकाय में जाता है। आत्मा द्वारा किये गये कर्मों का फल स्वयं उसे ही भोगना पड़ता है, उसमें कोई भी हिस्सा नहीं बटा सकता है। कहा भी है —

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त—
मम्भोनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम् ।
जन्मान्तरार्जित शुभाशुभकृन्नराणां,
छायेव न त्यजति कर्म फलानुबंध ॥

जीव चाहे आकाश में चला जावे, चाहे दिशाओं के अंत में चला जावे, चाहे वह समुद्र के तल में छिप जाए, चाहे और किसी सुरक्षित स्थान में चला जाय, परन्तु पूर्व जन्म में उपार्जन

किये हुए शुभ अशुभ कर्म परछाई की तरह उनका पीछा नहीं छोड़ते हैं। कर्मों का फल भोग बिना कोई किसी भी अवस्था में छुटकारा नहीं पा सकता है।

इसलिये जो विद्वान हैं, समझदार हैं, ज्ञानी हैं, वे प्रत्येक कार्य को करने के पहले उसके फल का विचार कर लेते हैं और इस प्रकार अनेक पापों से बच जाते हैं। क्योंकि *"न गच्छइ सरणं तम्मि काले"* अर्थात् कर्म के उदय होने पर अथवा मृत्यु के समय उनके (आत्मा के) लिये कोई शरणदाता नहीं है।

बंधुओ ! हमारा यह जीवन क्षणभंगुर है। जितना भी पुण्य, जितना भी परोपकार, जितना भी आत्म विकास करना हो करलो। भगवान् महावीर ने कहा है कि *"समयं गोयम ! मा पमायए"* हे गौतम ! तुम एक समय का भी प्रमाद मत करो। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं महान कर्म योगी थे। गीता में उन्होंने कहा है —

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्"। अर्थात् कोई भी व्यक्ति क्षण भर के लिये भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। कर्म के बिना जीवन टिक नहीं सकता है। स्वयं अपने लिये भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि "हे अर्जुन ! मेरे लिये तीन लोकों में कोई भी ऐसा कर्म नहीं है, जो करना आवश्यक हो और न ऐसी कोई वस्तु है, जो मुझे प्राप्त न हो

और मुझे प्राप्त करनी हो, फिर भी मैं कर्म में लगा ही रहता हूं।"

महानुभावो ! गीता में कहा है "सहयज्ञा प्रजा सृष्ट्वा" (प्रजापति ने) यज्ञ के साथ प्राणियों को उत्पन्न किया। यज्ञ शब्द का अर्थ क्या है? "यज्" धातु के देव पूजा, सगति करण (सगठन) और दान ये तीन अर्थ होते हैं। जिस कर्म से सामान्य मनुष्यों का सत्कार होता है, जनता का सगठन होता है और गरीबों का उपकार होता है वह यज्ञ कहलाता है। जहां तक हम अपने कर्म से उत्पन्न होने वाला फल जनता की भलाई के लिये त्यागने को तय्यार नहीं होंगे, वहां तक हमारा वह कर्म, यज्ञ नहीं कहलायगा। हम सबको समाज के हित में अपने समस्त स्वार्थ समर्पित करना है इस प्रकार आसक्ति रहित कर्म करने वाले प्राणी को दोष नहीं लगता है, परन्तु जो व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिये कर्म करता है वह व्यक्ति दोषी बनता है। शास्त्रों में कहा है कि "अहिंसा यज्ञ है, नम्रता यज्ञ है यज्ञ सत्य का मूल है, यज्ञ ऐश्वर्य है, यज्ञ सौभाग्य है, यज्ञ मधुरता है, और यज्ञ ज्ञान है। यज्ञ की महिमा अपार है।

अनासक्ति योग के अनुष्ठान के लिये (१) इन्द्रियों का दमन, (२) मन का सयम, (३) कर्म फल पर आसक्ति नहीं रखना (४) नियत कर्म करना और (५) यज्ञ रूप कर्म करना, इन पाच बातों की आवश्यकता है।

बन्धुजनो ! उपनिषद् में कहा है कि "तेन त्यक्तेन

भुंजीथा मा गृध कस्यस्विद् धनम्' अर्थात् दान करके भोग कर, ललचा मत, भला यह धन किसका है ? धन सम्पत्ति संपूर्ण जनता की है। उसे जनता को समर्पित करके, जितना अपने जीवित रहने के लिये आवश्यक है उतना ही धन अपने लिये लेकर भोग कर। इससे अधिक का लालच मत कर। इसी भावना को *"यज्ञ भावना"* कहते हैं। यज्ञ के महत्व को गीता ने इन शब्दों में बखान किया है।

> यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः ।
> भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

यज्ञ के बाद बची हुई वस्तु का उपभोग करने वाले सज्जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। परन्तु जो केवल अपने लिये अन्न पकाते हैं वे पापी लोग पाप ही खाते हैं।

बन्धुओ ! दूसरों का दुःख दूर करना ही अहिंसा है। आज मानव *"जिसकी लाठी उसकी भैंस"* की नीति को त्याग कर *"जीओ और जीने दो"* की नीति को अपना रहा है। पर ज़रा गहराई से सोचोगे तो सच्ची अहिंसा को इससे भी दो कदम आगे पाओगे। विचार करिये, जो व्यक्ति गरीब है, असहाय है साधनहीन है, और अपना जीवन किसी भी प्रकार सब मुसीबतों को सहन कर व्यतीत कर रहा है, उसे केवल यह कहने का कि 'हे भाई ! तू जिन्दा रह' क्या मतलब होगा ? ऐसा कहना तो उसकी गरीबी का उपहास करना है। अगर आप

सच्चे अहिंसा के उपासक हैं तो उसे कहोगे कि हे बन्धु ! तुम्हारे जीवन की कठिनाइयों को दूर करने के लिये, मुझ से जितनी भी मदद हो सकती है करूंगा। तुम जीवन में हताश मत हो, नई आशा और नई उमंग के साथ नया जीवन शुरू करो। इसे कहते हैं "दूसरों को जिला कर स्वयं जीने की कला।"

अतएव महानुभावो ! पुरुषार्थ जगाओ, अनासक्त भाव से कर्तव्य करते जाओ और भगवान श्रीकृष्ण का अमर सन्देश हमेशा याद रक्खो—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है उसके फल पर तेरा अधिकार नहीं है। तेरा उद्देश्य कर्म फल कभी न हो और कर्मों के त्याग के प्रति तेरा अनुराग न हो।

बंधुजनो ! कई लोग ऐसा समझते हैं कि कर्म करने से पाप और पुण्य बंध होता है, इसलिये कुछ कर्म नहीं करना चाहिये। बाहर से तो वे कोई कर्म करते हुए नजर नहीं आते हैं, पर उनके मन के घोड़े तेजी से दौड़ रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिये गीता में कहा है कि—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

जो व्यक्ति अपनी कर्मेन्द्रियों को तो काबू में रखता है। परन्तु अपने मन में इंद्रियों व विषयों का स्मरण करता रहता है जिसकी प्रवृत्ति मूढ़ हो गई है, वह पाखंडी कहलाता है। परन्तु हे अर्जुन ! जो व्यक्ति मन द्वारा इन्द्रियों को नियंत्रित रखता है और अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों का कर्म के मार्ग में लगाता है, वह अधिक उत्कृष्ट है।

याद रखिये जो मनुष्य सब इच्छाओं को त्याग देता है और लालसाओं से शून्य होकर कार्य करता है जिसे किसी वस्तु के साथ ममत्व नहीं होता और जिसमें अहंकार की भावना नहीं होती उसे शांति प्राप्त होती है।

भाइयो ! अनासक्त भाव से कार्य करने का निष्काम-बुद्धि से कार्य करने का भारी महत्व है। जैन तथा वैष्णव दोनों के धर्मग्रंथों में इसकी महिमा का बखान किया गया है। दशवैकालिक सूत्र में कहा है —*"निष्काम भाव से देने वाला तथा निष्काम भाव से लेने वाला–दोनों दुर्लभ हैं और दोनों सद्गति को प्राप्त करते हैं।"*

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

इसलिये तू अनासक्त होकर सदा करने योग्य कर्म करता रह, क्योंकि ऐसा कर्म करता हुआ मनुष्य परमपद को प्राप्त होता है।

भगवान श्रीकृष्ण के इस उपदेश की आज देश को बहुत आवश्यकता है। आज देश, नौजवानों की तरुणाई को, नव निर्माण का आह्वान कर रहा है। हम भी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का त्याग करके अनासक्त भाव से निर्माण कार्य में लग जाना है तभी हमारा जयन्ती मनाना सफल होगा।

ॐ शांति शांति शांति

त्रिपोलिया, रतलाम
१२-८-६३

आत्म-विजय का महान् पर्व

卐 पर्युषण 卐

महान् पर्वाधिराज पर्युषण पर्व आज आरम्भ हो रहे हैं। पूरे एक वर्ष में ये आठ दिन हमारे भगवंतों ने, ऋषियों ने, आत्म आराधना के लिये रक्खे हैं। ये आठ दिन हमारे आत्मिक व्यापार के हैं, धार्मिक व्यापार के हैं जीवन निर्माण के हैं। सभी धर्मों में इस प्रकार के दिन नियत हैं। वैष्णवों में भी सन्त इसी बैठते हैं। जहां तक हो सके इन दिनों में सांसारिक प्रपंचों से दूर रह कर शांति-पूर्वक रहना चाहिये। इन दिनों में जीवन-चर्या बड़ी विवेकपूर्ण होनी चाहिये। आचारांग सूत्र में कहा है—"विवेगे धम्ममाहिए"-विवेक में ही धर्म है।

आ गया और उसने उसका घोंसला तोड़ डाला । बन्धुजनो ! ऐसों को शिक्षा देने से क्या लाभ ? मुझे पूरा विश्वास है कि यहाँ पर कोई भी तीसरे प्रकार का व्यक्ति व्याख्यान में नहीं है ।

भाइयो ! कषाय ही संसार का कारण है । क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार प्रकार के कषाय हैं जिन्होंने हमें चारों तरफ से जकड़ लिया है । कहा भी है—*"मूल हि संसारतरो कषाया एतान् विहायैव सुखी भवात्मन् ।"*—संसार वृक्ष का मूल ही कषाय है, इसलिये हे चेतन ! इनका परित्याग कर सुखी बनो ।

पहला कषाय क्रोध है । *"कोहो पीइं पणासेइ"*—क्रोध प्रीति का नाश करता है । मनुष्य के शरीर में छिपा हुआ क्रोध इस प्रकार देह का नाश कर देता है जिस प्रकार काष्ट के भीतर छिपी हुई अग्नि प्रज्वलित होने पर काष्ट को नष्ट कर देती है । क्रोध से पराजित हुआ मनुष्य सुखी नहीं हो सकता है । क्रोध आपसी सम्बन्धों को किरकिरा कर देता है, आपस में दीवालें खड़ी कर देता है । जिस घर में सुख और शांति का साम्राज्य होता है, वहाँ इस क्रोध रूपी पिशाच के प्रवेश से रङ्ग में भङ्ग हो जाता है और स्वर्ग नरक बन जाता है । कहा भी है—

क्रोधो मूलमनर्थानां क्रोधः संसारवर्द्धनः ।
धर्मक्षयकरः क्रोध तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ॥

क्रोध अनर्थों का मूल है, क्रोध संसार को बढ़ाने वाला है;

क्रोध से धर्म का नाश होता है, अतएव क्रोध का नाश करना ही उचित है।

मानव का दूसरा दुश्मन है मान अहंकार। अहंकार आठ बातों का होता है जाति, लाभ, कुल ऐश्वर्य बल, रूप, तप और श्रुत। अभिमान विनय धर्म का नाश करता है। पूर्व जन्म के पुण्योदय से जो मान, सम्मान सम्पत्ति सत्ता आदि प्राप्त हुए हैं, उनके अभिमान में आकर अगर हम इस जन्म में अकड़ में रहे, धर्म के प्रति अवज्ञा की, बड़ों की उपेक्षा की, छोटों को प्यार नहीं किया तो याद रखना अगले जन्म में इन सबसे वंचित ही अवश्य ही रहोगे। अगर आपके पास शिक्षा है तो सोचो कि दुनिया में तुमसे शिक्षित बहुत हैं। अगर आप धनवान रूपवान, सत्ता धारी हैं तो विचारो कि दुनिया में तुमसे ज्यादा धन कुबेर पड़े हैं तुमसे रूप लावण्य में हजार गुणे ज्यादा स्त्री-पुरुष इस संसार में विद्यमान हैं और सत्ता न तो किसी की रही न रहेगा। इस प्रकार का चिंतन करने से इस अभिमान रूपी गज को अंकुश से लाया जा सकता है।

दीक्षा से बड़े होने पर भी आखिर मेरे छोटे भाई हैं मैं इन्हें वंदना कैसे कर सकता हूं, ऐसा अभिमान बाहुबलीजी को हुआ। उन्होंने सोचा कि अगर मैं घोर तपस्या करके केवल ज्ञान प्राप्त कर लूंगा तो फिर मुझे छोटे भाइयों को वंदन नहीं करना पड़ेगा। ऐसा संकल्प करके उन्होंने घोर तपस्या की परन्तु केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। बहिनों ने भाई के मन की स्थिति समझ

कर, कहा कि 'वीरा म्हारा गज थकी उतरो, गज चढ्या केवल ने होय रे" इन पंक्तियों को सुनतेही बाहुबलीजी को होश आगया। ज्यों ही उन्होंने अभिमान का त्याग किया कि उन्हें केवल ज्ञान हो गया। बंधुओ! कितनी ही घोर तपस्या करो, परन्तु यदि तनिक भी मान शेष रह गया तो मान का दरवाजा बंद ही रहता है। अतएव अभिमान को त्यागने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

माया तीसरा कषाय है। माया, कपट, ठगाई इनका त्याग करना अति कठिन है। क्रोध और मान तो बहुधा दृष्टिगोचर हो जाते हैं पर माया तो गुप्त रूप से कार्य करती है। इनका पहचानना भी कभी कभी मुश्किल हो जाता है। अगर हृदय में माया है कपट है तो सारा धर्म कार्य तप दान आदि निष्फल हो जाता है।

कहा भी है—

> विधाय माया विविधैरुपायैः
> परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति
> ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्ग–
> सुखान् महामोहसखाः स्वमेव ॥

जो प्राणी अनेक प्रकार के उपायों से माया करके दूसरों को कष्ट पहुंचाते हैं, वे महामोह के मित्र बन कर आत्मा को ही देवलोक और मोक्ष के सुख से वंचित करते हैं।

मायावी मनुष्य को हमेशा नित्य नये प्रपंच करने पड़ते हैं। एक झूठ को छिपाने के लिये अनेक बार झूठ बोलना पड़ता है और दुनिया में उस पर कोई विश्वास नहीं करता है, एवं दुनिया कह कर लोग उससे दूर रहते हैं। आत्मा को निर्मल करने के लिये माया के प्रपंच से बचने की भरसक कोशिश करना चाहिये।

लोभ यह चौथा कषाय है। लोभ एक इतना बड़ा विशाल समुद्र है कि इसके भंवर में पड़कर निकलना अत्यंत ही कठिन है। लाभ से लोभ आता है, लाभ से कामनायें बढ़ती हैं, लाभ से अज्ञान बढ़ता है और लोभ से विनाश होता है- लोहो सव्व विणासणो। बन्धुओ! उपशांत भाव से, क्षमा से क्रोध को, विनय से मान को सरलता से माया को और संतोष से लोभ को जीतो। कषाय जहर है और क्षमा, नम्रता, सरलता और संतोष अमृत है।

भाइयो! पर्युषण पर्वाराधना के दिनों में सामायिक पौषध अवश्य करना चाहिये। सामायिक का स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार बतलाया है—

समता सर्वभूतेषु संयम शुभ भावना।
आर्तरौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिक-व्रतम्॥

सब जीवों पर समभाव रखना, पांच इन्द्रियों को अपने वश में रखना, हृदय में शुद्ध और श्रेष्ठ भाव रखना, आर्त और रौद्र ध्यान का [illegible] सामायिक व्रत है।

जिस प्रकार चंदन अपने काटने वाले कुल्हाड़े को भी सुगंधित कर देता है, उसी प्रकार अपने विरोधी को भी जो समभाव रूपी सुगन्ध अर्पित करता है, वही महापुरुषों की सामायिक है।

सामायिक काल में चित्तवृत्ति शांत रहती है, और किसी का भी बुरा नहीं सोचा जाता है। चंचल मन को काबू में रक्खा जाता है। जब तक सामायिक चालू रहती है तब तक अशुभ कर्म क्षीण होते जाते हैं। करोड़ों जन्म तक निरंतर उग्र तप करने वाला साधक जिन कर्मों को नष्ट नहीं कर सकता है, उनको सम भाव पूर्वक सामायिक करने वाला व्यक्ति नष्ट कर देता है। आत्मा में जब समभाव का प्रखर सूर्य उदय होता है तो राग द्वेष का अन्धकार मिट जाता है और आत्मा दिव्य प्रकाश से चमकने लगता है। उस दिव्य प्रकाश में योगीजन अपने भीतर परमात्मा का स्वरूप देखने लगते हैं।

बन्धुजनो! सामायिक हृदय को विशाल बनाती है। जीवन में समता सम-भाव को दृढ़ करने के लिये मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ भाव इन चार भावनाओं को अपनाना अति आवश्यक है। आचार्य अमितगति सामायिक पाठ में कहते हैं—

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदम्।
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्॥

माध्यस्थभावं विपरीतवृतौ ।
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

हे जिनेन्द्र देव ! मैं यह चाहता हूँ कि यह मेरी आत्मा सदैव प्राणीमात्र के प्रति मित्रता का भाव, गुणिजनों के प्रति प्रमोद का भाव दुखी जीवों के प्रति करुणा का भाव और विरोधी वृत्ति वालों के प्रति राग द्वेष रहित उदासीनता या माध्यस्थ भाव ग्रहण करे।

भाइयो ! इन पवित्र पर्व के दिनों में आप पौषध करें। पौषध का अर्थ है 'प्रकर्षेण औषध इति पौषध'-आत्मा को उत्कृष्ट औषधि खिलाने का नाम पौषध है। शारीरिक बीमारियों को दूर करने के लिये, कमजोरी को दूर करने के लिये वैद्य, डाक्टर आपको औषधियें देते हैं, इन्जेक्शन देते हैं। अभ्यंतर स्वास्थ्य लाभ के लिये सत महात्मा भी औषध देते हैं जिससे आत्मा की कमजोरी दूर हो जाय। आत्मा की दवा क्या है ? कषायों को कम करना, समभाव रखना, परोपकार करना, स्वाध्याय करना प्रभु स्मरण करना इत्यादि। जब हम पौषध करें तो दिन भर सामायिक करें, स्वाध्याय करें, प्रभु स्मरण करें, भजन गावें। अगर कुछ नहीं हो सके तो मौन धारण करके नवकार मंत्र का जाप करें। लौकिक त्योहारों पर नाना प्रकार की मिठाइयां तय्यार की जाती हैं, पर्वाधिराज के दिनों में आप धार्मिक मिठाइयां तय्यार करें। प्रतिदिन हमारी जितनी धार्मिक दिन चर्या है उससे कहीं अधिक धार्मिक प्रवृत्तियां करने का संकल्प लें।

बन्धुओ ! प्रभु भक्ति में द्रव्य पूजा और भाव पूजा दोनों का समावेश हो जाता है। चन्दन पुष्पादि चढ़ाना द्रव्य पूजा है, भजन, कीर्तन, स्तुति आदि करना भाव पूजा है। इनसे भी आगे बढ़ कर आत्मा ईश्वर तल्लीनता की स्थिति में पहुँच जाती है, ऐसी स्थिति में परमात्मा से एकाकार का अनुभव होता है। प्रभु का गुणगान करते समय अपन कहते हैं कि 'हे भगवन्!' आप निरंजन, निराकार हो, निर्लेप हो, निर्मोही हो, राग द्वेष से रहित हो, विषय विकारों से रहित हो।" यह भगवान के मौलिक गुणों की स्तुति करना है। स्तुति करने के बाद हम जप करने लगते हैं। जप से फिर ध्यान में मग्न हो जाते हैं। जप करते समय हम बोलते हैं जैसे "नमो अरिहंताण।" ध्यान में हमारा शरीर नहीं हिलता है, मुंह से बोल नहीं निकलता है, मन भी निश्चल रहता है। ध्यान करते करते जब हम प्रभु के स्वरूप गुण में लीन हो जाते हैं तो वह स्थिति लवलीन होना कहलाता है। यदि यह स्थिति अल्प समय के लिए भी आ गई तो समझो कि भव-सागर से बेड़ा पार हो जायगा।

महानुभावो ! आत्म साधना की ये अनेक सीढ़ियाँ हैं अनेक श्रेणियाँ हैं। साधक एक के बाद एक श्रेणी पर चढ़ता है। इसके लिए साधक को सदैव सचेत रहना पड़ता है। अगर साधक ऊँची श्रेणी पर चढ़ भी गया, पर अगर जरा सी भी असावधानी हुई कि वह वापस नीचे की श्रेणियों पर आ जाता है। साधना का पथ बड़ा टेढ़ा है। प्रभु-भक्ति में मग्न मीरा कहती है कि—

हे री मैं तो दर्द दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोय।
सूली उपर सेज हमारी, किस विध सोना होय ॥

गर किसी व्यक्ति का बिछौना सूली पर लगा हो तो वह क्षण भर के लिये भी उस पर सो नहीं सकता है उसे जागृत रहना पड़ता है इसी प्रकार अगर प्रभु से प्रेम करना है तो अपनी पूरी की पूरी शक्ति उनको प्रसन्न करने में लगाना होगी, ध्यान क्षण भर के लिये भी दूसरी तरफ विचलित नहीं करना होगा। ऐसी अनन्य भक्ति जब हमारी होगी तो अवश्य ही परमात्मा से हमारा साक्षात्कार होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

आज से पर्युषण पर्व प्रारंभ हो रहा है, इन दिनों आप अधिक से अधिक धर्म ध्यान करो, स्वाध्याय करो, आत्म चिंतन करो तथा जीवन को सफल बनाओ।

ॐ शांति शांति शांति

त्रिपोलिया, रतलाम
१६-८-६३

जीवन की बुनियाद—
चरित्र निर्माण

(विद्यार्थी यूनियन द्वारा मोहन टाकिज में आयोजित सभा में दिया गया प्रवचन)

आज हम सब यहाँ पर बाल जीवन, युवक जीवन तथा छात्र जीवन के विकास के संबंध में चर्चा करने को एकत्रित हुए हैं। संसार सदा से सरिता प्रवाह की तरह बहता रहता है और बहता रहेगा। संसार की उन्नति या अवनति संसार में जन्म लेने वाले अन्य प्राणियों पर नहीं, परन्तु मानव समाज पर निर्भर है। कर्तव्य शक्ति, विवेक शक्ति और ज्ञान शक्ति के अभाव में पशु पक्षी संसार की उन्नति या अवनति में भाग नहीं ले सकते हैं। मानव मस्तिष्क ही अनेक प्रकार की शक्तियों का पुंज है भंडार है, जिसके द्वारा वह सब विकास या योजनाओं को बनाकर पूरा करने की ताकत रखता है।

ऐसा मानव मस्तिष्क मिलने पर हमारा कर्तव्य हमें यह सोचने को प्रेरित करता है कि हमारे देश का अभ्युदय कैसे हो? हमारा देश तमाम संकटों से निकल कर विनाशकारी तत्वों के प्रभाव से बचकर किस प्रकार विकास की मंजिल तय करे? हमारे देश के सुनहले भविष्य की आशा हम किससे रक्खें? छात्रों और छात्राओं से। आज के विद्यार्थी कल के समाज के कर्णधार और देश के कर्णधार हैं और ये ही देश को सर्वोदय के मार्ग पर ले जाने वाले हैं।

प्रिय छात्रो! हमेशा यह याद रखिये कि आप इस देश के नागरिक हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियों के अतिरिक्त समाज तथा राष्ट्र की जिम्मेदारी भी आप पर है। यह समझना भूल होगी की राष्ट्र के भविष्य की जिम्मेदारी केवल नेताओं की है। नेता और नागरिक का संबंध नाखून और मांस जैसा है। नागरिकों की उचित इच्छाओं और उचित मार्गों के अनुरूप कार्य करके ही नेता नियम सफल और लोकप्रिय हो सकते हैं तथा नेताओं के मार्ग दर्शन में ही नागरिक उन्नति कर सकते हैं। अतएव हम सबको यह विचार दृढ़ करना है कि 'हमारे ऊपर देश, समाज, धर्म और स्वयं अपने जीवन को उन्नत करने की पूरी जिम्मेदारी है। अगर हमने ऐसा कर लिया तो हमारा राम राज्य का सपना कुछ ही वर्षों में साकार हो सकता है।

भाइयो! जितने भी कठिन कार्य थे वह तो हमारे राष्ट्र-पिता पूरे कर गये। परतंत्रता की जंजीरों में जकड़ी हुई भारत

दिलीप और श्रीकृष्ण तो स्वयं गौ माता की सेवा करते थे। जहाँ राजा स्वयं गौ माता की सेवा करते हों, वहां फिर प्रजा गौ माता की सेवा करे तो क्या बड़ी बात है। हमारे देश में उस समय घी दूध की नदियां बहती थी। आज केवल गौ सेवा की ही बात नहीं है, हमारे युवक वर्ग को तो किसी भी प्रकार की सेवा या श्रम करने में शर्म आती है। भाइयो! एक ओर तो आप शहंशाही खतम करने की बात करते हो दूसरी ओर अपने जीवन में शहंशाह बनने की उनकी आदत जीवन में डालने की चेष्टा कर रहे हो। अगर जीवन को उन्नत बनाना है तो सरल बनो सेवक बनो, श्रम की प्रतिष्ठा समझ कर उसे जीवन में स्थान दो।

यह बच्चा कभी दो पैसे का गुड़ ले लेता और कभी २ एक पैसा बचा भी लेता। गरीब सरकारी माँ बाप के बच्चे भी सरकारी होते हैं। जिस घर में फिजूल खर्ची होती है उस घर के बच्चे भी फिजूल खर्च करने लग जाते हैं। श्रीमंत अपनी शान शौकत में सैंकड़ों रुपये खर्च कर देते हैं पर गरीबों की सुध भी नहीं लेते हैं। अपनी खिचड़ी पकाने में ही वह मस्त रहते हैं। इतनी ज्यादा खिचड़ी पका लेते हैं कि उनका और उनके परिवार का पेट भरने के बाद भी बच जाती है तो भूठन में डाल देते हैं पर भूखे पड़ोसी को देने की नीयत नहीं होती। कहा भी है –

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः ॥

भामाशों में हजम करने की शक्ति नहीं होती पर खाने की इच्छा बहुत होती है। लेकिन दरिद्र मनुष्य लकड़ी भी पचा जाता है। नियम मालूम नहीं है जिन्हें खाने को ज्यादा मिलता है और जिसे भूख अधिक है उसे खाने को कम मिलता है।

श्रीमत तिजोरियाँ भरते ही जाते हैं। परन्तु इन तिजोरियों की फूटी कौड़ी भी साथ नहीं जाने वाली है। अगर साथ ले जाना है तो कर्तव्य धन भक्ति धन दया धन और परोपकार धन से अपनी तिजोरियां भर लो। यही धन साथ जाने वाला है, रुपयों, रत्नों और मुहरों से भरी हुई तिजोरियां साथ जाने वाली नहीं है।

एक दिन उस बालक ने कुछ नहीं खरीदा और रूखा-सूखी रोटी खाकर नदी में पानी पीने झुका तो दोनों पैसे पानी में गिर गए। पैसे क्या गिरे मानो दो मुहरें गिर गई और वह बालक बिलख बिलख कर रोने लगा। इतने में एक महात्मा उधर से निकले। बच्चे को रोता देखकर उन्हें दया आगई और पूछा कि बेटा क्यों रो रहे हो? बालक ने रोते रोते कहा कि मेरे दो पैसे पानी में गिर गये हैं। तब महात्माजी ने कहा कि बेटा रोओ मत, मैं नदी में से तुम्हारे पैसे ढूंढ कर निकालता हूं। नदी में से उन्होंने मुट्ठी भर कर रेत निकाला, उसमें कुछ नहीं निकला दूसरी बार जब फिर रेत निकाली तो उसमें मोहरें और रुपये निकले। महात्माजी ने कहा बेटा इसमें से जो कुछ तेरा है सो ले ले। बालक बोला महात्माजी इसमें मेरा पैसा नहीं है। मैं

नहीं लूंगा । महात्माजी ने दो चार बार फिर रेत निकाली, उनमें कभी रत्न, कभी जवाहरात कभी मोती निकले, परन्तु प्रत्येक बार लड़के ने लेने से इंकार कर दिया । वह बोला—ये वस्तुएं मेरी नहीं है, मैं चोर नहीं हूं । पराई चीज नहीं लूंगा । आखिर जब बालक परीक्षा में खरा उतर गया तो महात्माजी ने एक बार फिर मुट्ठी भर कर रेत नदी में से निकाला, इसमें बालक के गिरे हुए दो पैसे थे । बालक ने अपने पैसों को पहचान लिया और आनन्दित होकर बोला कि हां यही मेरे दो पैसे हैं मुझे दे दीजिए । पैसे मिलने पर वह बड़ा प्रसन्न हुआ मानों उसे कोई निधि मिल गई हो । वह महात्माजी को बार बार प्रणाम करता है और उनकी ओर बड़ी कृतज्ञता की नजरों से देखता है । महात्माजी बोले कि बेटा मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि मेरे देश में तेरे जैसे बालक हैं । गरीब होते हुए भी तेरी नैतिकता सराहनीय है । ले जा बेटा, यह सब मोहरें रूपये और रत्न, तेरी मां से कह देना कि महात्मा ने दिये हैं । तुझे न तो चोरी करने का दोष लगेगा और न पराई चीज लेने का दोष लगेगा । बालक ने सब चीजें ले जाकर अपनी मां को दे दी ।

यह तो दृष्टांत है । बचपन में ही बालकों को नैतिकता का पाठ पढ़ाने से ही भविष्य में उनकी नैतिकता बढ़ेगी । सोचो कि आपको क्या बनाना है । भारत के बगीचे के सुगंध युक्त पुष्प या निर्गंधा पुष्प । पुष्प कुम्हला जाते हैं, मुरझा जाते हैं और नष्ट भी हो जाते हैं पर वे अपनी महक छोड़ जाते हैं । इसी

प्रकार हम भले ही मर जावेंगे परन्तु संसार में मानवता की जो सुगंध है, सेवा परायणता की जो सुगंध है वह कभी मरने वाली नहीं है।

छात्रो ! आज भारत की संस्कृति मंद पड़ गई है, वह धराशायी हो रही है। यदि हमने भारतीय संस्कृति की धार्मिक और आध्यात्मिक परंपराओं को पुनः स्थापित नहीं की तो जिस उन्नति के हम स्वप्न देख रहे हैं वह साकार नहीं हो सकते। चार दिन की इस भौतिक चकाचौंध में फंस जाना हम भारतीयों को शोभा नहीं देता। आप विनीत बनो, मातृ भक्त बनो। *"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"* यह पाठ आज सुनाई नहीं देता है, इसका उच्चारण कमजोर पड़ गया है। प्राचीन काल में प्रातः काल माता-पिता को प्रणाम करने और प्रार्थना करने का नियम था। आज तो माता पिता को प्रणाम करने में शरम आती है और प्रार्थना करना पुराने जमाने की बात कही जाती है। आपको प्रतिदिन माता पिता एवं घर के बड़ों को प्रणाम करने का तथा प्रार्थना करने की आदत डालनी चाहिये। हमारे राष्ट्र पिता गांधीजी इतने व्यस्त रहते हुए भी हमेशा प्रार्थना करते थे। उन्होंने अपनी जीवनी में लिखा है कि 'मैं भोजन के बिना रह सकता हूँ पर *प्रार्थना के बिना नहीं रह सकता।'* हम आज ईश्वर की भक्ति में, ईश्वर की आराधना में, प्रभु की हाजरी भरने में इतने कमजोर क्यों हो गये हैं ? प्रत्येक बालक का यह कर्तव्य है कि वे प्रतिदिन घर के सब लोगों के साथ पांच मिनि

भी प्रार्थना करे। बच्चों में अच्छे सस्कार डालना माताओं का काम हैं। सस्कार तो बच्चों के गर्भ में ही पड़ जाते हैं। वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में प्रवेश करना गर्भ में ही सीखा था। याद रखिये, जिस हृदय में ईश्वर का निवास होता है, जो ईश्वर का निष्ठापूर्वक स्मरण करता है उसके हृदय में दानवता का साम्राज्य नहीं हो सकता है, आसुरी वृत्तियां घर नहा कर सकती हैं यह मेरा स्वय का अनुभव है।

विद्यार्थियो! जब आप समाज में, धार्मिक स्थान में या स्कूल में बैठो तो सबको एक समान समझो, सबको बराबर समझो श्रीमंताई की भावना आप अपने घर में रक्खो, खाने पीने में रक्खो, कपड़े गहने पहनने में रक्खो, पर जब आप सामाजिक या धार्मिक क्षेत्र में आओ या जनता की सेवा करो तो अपनी श्रीमंताई की बू त्याग दो। भगवान श्रीकृष्ण के पास जब सुदामा दरिद्र वेश में फटे चीथड़ों से आये तो भगवान ने उनके साथ कैसा बर्ताव किया? तुरत सिंहासन से उतर कर नीचे गये और लपक कर उन्हें गले लगा लिया। परन्तु हमारे पास से यदि ऐसा कोई व्यक्ति निकल जावे तो हम नाक भौंह सिकोड़ लेते हैं, या नाक पर रूमाल रख लेते हैं। कहीं कहीं तो ऐसा भी देखने में आया है कि घर के वृद्ध अगर स्नानादि कम करते हैं या सफाई कम रखते हैं तो उनके पास जाने का भी मन नहा होता है और उनसे दूर रहने में ही अपनी शान समझते हैं।

बन्धुओ! भगवान श्रीकृष्ण एक महान कर्म योगी थे।

अगर हमें भी कर्मवीर बनना है, धर्मवीर बनना है तो हमें भी निरंतर कर्म करना पड़ेगा। प्रमाद को हमें जीवन में स्थान नहीं देना है। नेहरूजी का भी आज का नारा है 'आराम हराम है' किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

बिना कर्म के कभी न रण में जय की भेरी बजती है।
बिना कर्म के कभी न जग में भाग्य रेख ही मिलती है॥
डग डग पग पग पर भी देखो कर्म कर्म ही छाया है।
कर्म किया है जिस प्राणी ने मोक्ष उसी ने पाया है॥

भाइयों! देश पर आक्रमण तो समय समय पर होते हैं, परन्तु हमारे जीवन पर तो प्रति पल आक्रमण हो रहा है। आप पूछेंगे कि किसका आक्रमण हो रहा है? जीवन पर आक्रमण होता है स्वार्थ का, अनैतिकता का, विषय विकारों का, भोग विलासों का। हमें अपने आंतरिक शत्रुओं से सदैव सचेत रहना है। हमें अपना जीवन संयमी, त्याग मय, सरल और सादा बनाना है। आप फैशन के फितुर में न बहें। पचास रुपये का जूता चाहिये, पर गरीबों को खाने के लिये पचास पैसे भी नहीं मिलते हैं। फिजूल खर्ची, बीड़ी सिगरेट, सिनेमा आदि में आपका कितना धन व्यय हो जाता है उसे कम कीजिये और जो रकम बचे उसे गरीबों पर खर्च करो।

सुयोग्य छात्रो! आप चरित्र निर्माण के लिये कुछ नियम बनाओ, उनको डायरी में लिखो और प्रतिदिन उनका पालन

करो। विशेष कर इस बात की प्रतिज्ञा करो, अपने मन में दृढ़ निश्चय करो कि हम बीड़ी सिगरेट नहीं पियेंगे, शराब नहीं पीयेंगे, मांस – अंडे नहीं खावेंगे, किसी का नुकसान नहीं करेंगे और यथा शक्य दूसरों का भला करेंगे। नीतिकार ने कहा है-"जिन्होंने न विद्या पढ़ी है न तप किया है, न दान ही दिया है, न गुण ही सीखा है, न सचरित्रता का आचरण किया है न धर्म का पालन किया है, वे लोग इस पृथ्वी पर बोझ बन कर मानव की सूरत में रहते हैं।

अंत में मुझे आपसे यही कहना है कि आप अपनी मित्रता अच्छे व्यक्तियों से करें। कुसंगति से जो बुरी आदतें बचपन में पड़ जाती हैं उनका फल हम आजीवन भोगना पड़ता है। देखिये गरम लोहे पर अगर जल की बूंद पड़ती हैं तो उनका नाम भी नहीं रहता है वही बूंदें अगर कमल के पत्तों पर पड़ती हैं तो मोती के समान लगती हैं और वही बूंदें स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में पड़ती हैं तो मोती बन जाती हैं। आप रत्न बनो। जिस देश में रत्न ही रत्न तैयार होते वहां अंधेरा कैसे रह सकता है? अज्ञान का तिमिर नष्ट होगा, दरिद्रता का तिमिर नष्ट होगा। चारों दिशाओं में प्रकाश फैलेगा, हर क्षेत्र में प्रकाश फैलेगा और हमारा भारत देश पुनः जगद्गुरू भारत कहलायेगा।

ॐ शांति शांति शांति

मोहन टाकीज रतलाम
२१-८-६३

स्नेह की सुरसरी—संवत्सरी

मनुष्य जन्म को सफल बनाने के लिये आत्म साधना करना उतना ही आवश्यक है जितना कि ध्यान लगन पर पाना। वे महापुरुष धन्य हैं जिन्होंने आत्म साधना के उत्कृष्ट मार्ग पर चल कर अपने जीवन को सफल बनाया। प्रकाश-स्तम्भ बनकर आध्यात्मिक आलोक से उन्होंने भटकते हुए मानव का पथ-प्रदर्शन किया। आत्म साधक के जीवन में स्नेह की सुरसरिता बहती है, जिसकी बूंद बूंद में वह संजीवनी शक्ति है जो मन मन के थके हुए प्राणों की थकावट हर लेती है और उन्हें यह मानसिक सान्त्वना देती है कि वह भी अपने जीवन का उद्धार कर सके। वह *'मित्ति मे सव्व भूएसु'* तथा *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* की भावना में ओत प्रोत रहता है।

बंधुओ ! जरा विचार करिये कि आज हमारे जीवन की क्या स्थिति है ? हमारा जीवन विषमय है या रसमय ? कहा है-'विषाक्त जीवन प्रोक्तं रसहीनं तु देहिनाम्'-शरीर धारियों का रस हीन, स्नेह हीन जीवन विषमय है। जीवन में यह विष मनुष्य के व्यवहारिक, धार्मिक सामाजिक तथा पारिवारिक संबंधों के हरे भरे फले फूले वृक्ष को सुखा देता है। स्नेह सरोवर के सूखने से मानवता की रसीली सुगंध प्रसारित करने वाले कमल दलों के अभाव से विश्व का शाश्वत सौंदर्य नष्ट हो जाता है। नीरसता का हिमपात, दानवता का क्रूर आघात मानवता को अस्त व्यस्त कर देता है। इस स्थिति में मानव यदि मन की वीणा के तार झंकृत करने का प्रयास करे तो साधना की स्वर लहरी से सद्भाव की स्नेह घटा ऐसी शीतल रस वर्षा करेगी कि अंत स्थल का स्नेह सरोवर लबालब भर जायगा। इससे मानवता के कमल फिर खिल उठेंगे और हमारा जीवन सरस, सफल और सार्थक हो जायगा। संवत्सरी पर्व ही एक ऐसा स्वर्णिम अवसर है जब हम स्नेह की अमृत वर्षा करके मानवता के सूखे वृक्ष को हरा भरा कर सकते हैं।

भाइयो ! संवत्सरी पर्व की आराधना का लक्ष्य यही है कि हम कायिक, वाचिक, एवं मानसिक कषायों का दूर करके हृदय में स्नेह से परिपूर्ण सद्भावनाओं का संचार करें। इस पर्व की उपयोगिता भी इसी में है कि मानव मात्र इसकी आराधना करके विश्व के प्राणी मात्र के साथ स्नेह के पवित्र संबंध में बंध

जाय। बंधुओं! आप श्वेतांबर हो या दिगम्बर स्थानकवासी हो या तेरापंथी, जैन हो या वैष्णव आपके साधना के मार्ग भले ही भिन्न हों पर चलना है आप सबको आत्म विकास के राज मार्ग पर।

मानव मात्र के लिये जीवन में भूल होना स्वाभाविक है। मनुष्य से होने वाली त्रुटियां दो प्रकार की होती हैं -व्यक्त और अव्यक्त। जो त्रुटियां होने पर प्रकट हो जाती हैं, वे व्यक्त कहलाती हैं और इन्हें सुधारना आसान होता है पर जो त्रुटियां आंतरिक होती हैं, अप्रकट रहती हैं जिन्हें केवल व्यक्ति स्वय ही जानता है वे अव्यक्त कहलाती हैं। इन अव्यक्त त्रुटियों को पहचान कर उनका दूर करना मनुष्य के लिये जरा मुश्किल हो जाता है। क्रोध, मान, माया लोभ, हिंसा, अनाचार, विश्वास घात आदि दुर्गुण युक्त त्रुटियाँ ऐसी हैं जिन्हें करने में मानव संकोच नहीं करता है। इसका नतीजा यह होता है कि ये दुर्गुण धीरे धीरे मानव के सद्‌गुणों को दबा देते हैं और आसुरी प्रवृतियां अपना घर बना लेती हैं।

महानुभावों! हमें सदा इस बात के लिये सावधान रहना है कि कहीं हम अपनी मानवता को न खो दें। यदि कभी कुसंग, कुसंस्कार और कुव्यवहार के कारण हमारी बुद्धि भ्रमित हो जाय तो हमें अपनी गलतियों के लिये क्षमा मांगनी चाहिये। भगवान महावीर के आदेशानुसार कायिक, वाचिक एवं मानसिक दुष्प्रवृत्तियों से उत्पन्न होने वाली त्रुटियां, भूलों एवं अप

राधों के लिये हृदय से *'मिच्छामि दुक्कड'* देवें। यही संवत्सरी पर्व का अमर संदेश है।

इस अवसर पर मैं आपको राजा उदयन और चंड प्रद्योतन की कथा का सार सुनाती हूं। महाराज उदयन एवं महारानी प्रभावती ने श्रद्धा एव भक्तिपूर्वक वीतराग मार्ग अपना लिया था। दोनों नियमित रूप से प्रभु की आराधना करते थे। एक दूसरे को अध्यात्म मार्ग में अग्रसर होने को प्रोत्साहित करते थे। जब महाराजा उदयन अपने मधुर स्वर से प्रभु भक्ति के गीत गाते तब महारानी आत्म विभोर होकर प्रभु की प्रतिमा के समक्ष नृत्य करती हुई पायलों की झंकार से वातावरण को संगीतमय बना देती थी। एक दिन जिन मंदिर में महाराजा एवं महारानी प्रभु भक्ति में लीन थे, महाराज वाद्य यत्र बजा रहे थे और महारानी सुधबुध खोकर भजन गाती हुई नृत्य कर रही थी। उस समय सहसा महारानी पर महाराजा की दृष्टि पड़ गई तो क्या देखते हैं कि महारानी का धड़ ही दिख रहा है और मस्तक गायब है। महाराजा घबरा गये उनके हाथ शिथिल हो गये। हाथ के शिथिल होने से वाद्य यत्रों की तान भी शिथिल हो गई और महारानी के पाँव रुक गये। महारानी ने सावधान होकर महाराज से पूछा कि देव! मैं प्रभु मे एकाकार हो रही थी, वाद्य यन्त्र के बंद होने से मेरी तन्मयता भंग हो गई। क्या आप थक गये हैं? महाराज बोले कि देवी! मैंने ज्योंही तुम्हारी तरफ देखा मुझे तुम्हारा मस्तकहीन धड़ ही नृत्य करता हुआ

नजर आया। इस कारण से मेरे हाथ पांव ढाले पड़ गय। महारानी को सामुद्रिक विद्याओं और स्वप्न फल का ज्ञान था। उसने कहा स्वामिन ! मेरा आयुष्य कम रह गई है, मुझे सयम ग्रहण करने की आज्ञा देवें। आप मेरे सदैव हितैषी रहे हैं, अत मोह को त्याग करके मेरे उत्थान में सहायक बनें। महाराजा ने महाराणी को सयम लेने की स्वीकृति देते हुए कहा कि प्रिये ! सयम ले ने बाद तुम अवश्य ही स्वर्ग में जाओगी। वहां से तुम मेरी आध्यात्मिक और लौकिक उन्नति में सहायता करना। महारानी ने सयम लिया और आयुष्य पूर्ण होने पर स्वर्ग में गई।

इधर चंडप्रद्योतन राजा ने महाराणी प्रभावती के समय का जिन प्रतिमा तथा उनकी सुदरी दासी का हरण कर लिया। जब महाराजा उदयन को इस बात का पता लगा तो उन्होंने चंडप्रद्योतन से कहलाया कि आप दासी रख सकते हैं पर जिन-प्रतिमा को लौटा दीजिये। पर राजा चंडप्रद्योतन ने एक बात नहीं मानी अंत में सग्राम हुआ और चंडप्रद्योतन की हार हुई। महाराजा उदयन ने उसके पांव में सोने की बेड़ियाँ डाली तथा उसके सिर पर एक पट्टा बांध दिया, जिस पर लिखा था कि यह मेरी दासी का पति है।'

राजा उदयन वापस फौजे लेकर लौट रहा था, रास्ते में चातुर्मास का समय आ गया। उसने आज के मंदसौर के यहां पड़ाव डाल दिया। पर्युषण पर्वाधिराज के दिनों में

उदयनाने बड़ा धर्म ध्यान किया। सवत्सरी पर पौषध लेने के पूर्व उदयन ने अपने रसोइये से कहा कि मेरे तो आज उपवास है तुम चंडप्रद्योतन से पूछ कर उसकी रुचि के अनुसार भोजन बना देना। रसोइये ने आकर चंडप्रद्योतन से कहा कि महाराजा उदयन के तो आज उपवास सहित पौषध है। आपकी जैसी इच्छा हो बता दें मैं भोजन बना दूगा। चंडप्रद्योतन ने मन में यह सोचकर कि कहीं मेरे भोजन में विष नही मिला दे, कह दिया कि आज संवत्सरी पर्व है मैं भी उपवास करूंगा।

जब महाराज उदयन ने यह सुना कि चंडप्रद्योतन ने संवत्सरी पर्व के अवसर पर उपवास किया है तो वे समझ गये कि यह मृत्यु के डर से ऐसा कर रहा है। फिर भी सवत्सरी पर्व के अवसर पर वह उपवास कर रहा है, इसलिये वह आज से सहधर्मी हुआ, मेरा मित्र हुआ। भला मित्र के पांव में बेड़ियां कैसे रह सकती हैं? फिर उसकी बेड़िया काटने और मित्रता प्रदर्शित करने के पहले वह पौषध करने भी कैसे जा सकते थे? तुरन्त ही चंडप्रद्योतन की बेड़ियाँ काट दी गई और महाराज उदयन ने उसे गले लगाते हुए कहा कि आज से आप मेरे मित्र हैं सहधर्मी हैं और क्षमापना की। चंडप्रद्योतन पानी पानी हो गया और नत मस्तक होकर उसने अपने कृत्यों की क्षमा मांगी। महाराज उदयन ने उसका राज्य भी वापिस उसे लौटा दिया। चंडप्रद्योतन को क्षमा करने के बाद महाराज उदयन ने पौषध किया। यह है सवत्सरी पर्व की महिमा। आगम में कहा है—

जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा ।
जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा ॥

जो कषाय भाव को उपशांत करता है वह प्रभु की आज्ञा का आराधक होता है, जो कषायों को शान्त नहीं करता है वह आराधक नहीं होता है, विराधक गिना जाता है ।

बंधुओ ! प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिये मनुष्य को सद्भावना रखना अनिवार्य है । यही सद्भावना उस स्नेह को उत्पन्न करती है जिसके द्वारा पारस्परिक सहयोग प्राप्त होता है । स्नेह के अभाव में पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या एवं वैमनस्य के वे विनाशकारी अङ्कुर हमारे मानस पटल पर उग जाते हैं कि जिनके कारण हमारा उत्थान एवं अभ्युदय होना असंभव हो जाता है । अभ्युदय का मूल आधार सद्भाव एवं हृदय की शुद्धि है । यही कारण है कि भगवान महावीर ने अमरवाणी में सर्व आत्माओं के साथ मैत्री भाव स्थापित करने के उद्देश्य से यही सदेश दिया कि 'हे भव्य जीवों ! यदि तुम अपना वास्तविक कल्याण चाहते हो तो सबके साथ मैत्री भाव रक्खो ।

भाइयो ! स्नेह ही मानव हृदय में सहृदयता और सद्भाव की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर सकता है । स्नेह की आराधना के साथ इस पावनतम संवत्सरी पर्व की आराधना श्रद्धापूर्वक सद्भावना के साथ करके *'मित्ति मे सव्वभूएसु'* का आदर्श आत्मसात करके जीवन में सफलता प्राप्त करो ।

त्रिपोलिया रतलाम ३८६३

इच्छानिरोधस्तपः

आज बड़े आनन्द का, अभिनन्दन का और जीवन में कुछ ग्रहण करने का परम पुनीत दिन है। आज हम यहां त्यागमूर्ति तपस्वी मुनिश्री सागरमलजी महाराज साहब के दर्शन कर रहे हैं। इन्होंने ४६ दिन की तपस्या केवल गरम पानी के आधार पर की है। ऐसी तपस्या अपने आसपास जावरा मन्दसौर आदि स्थानों पर भी हुई है। बीकानेर में भी ७० ८० वर्ष के वृद्ध तपस्वी तीर्थसागरजी महाराज साहब ने ५८ दिन का उपवास किया है। यह चौदहवां या पन्द्रहवां अवसर है कि उन्होंने मासखमण किया है।

यह मानव शरीर, यह नर जीवन महा भाग्यशाली जीवों को ही मिलता है। इस नर देह में दुनिया भर की शक्ति, ज्ञान, क्षमा और विवेक मौजूद है। यह नर देह नारायण बनने के लिए उनके निकट पहुँचने के लिए बना है, न कि दानव प्रकृति में जाने के लिए या विषय भोग के कीड़े बनने के लिए या इन्द्रियों के गुलाम बनने के लिए। यदि हमने राक्षसी प्रवृत्तियों का पोषण किया स्वार्थपरता में दिन रात गुमाया तथा पेट पालने के अलावा देश, समाज राष्ट्र, जाति, धर्म तथा जीवन के लिए जरा भी विचार नहीं किया और न यह सोचा कि मैं कौन हूँ कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है, मैं [illegible] बन कर आया हूँ या चंद दिनों का मेहमान हूँ तो हमारा जीवन ही व्यर्थ है। महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इन प्रश्नों को हमने गौण बना दिए हैं।

शिक्षा केवल पेट पूर्ति के लिए ही नहीं है उसका महान उद्देश्य जीवन-विकास है। जीवन में दो ही रास्ते हैं—विकास का या विनाश का। इन दोनों शब्दों में केवल व्यञ्जन 'क' और 'न' का ही अन्तर है। परन्तु दोनों ही शब्द ३६ के अंक के समान एक दूसरे से भिन्न हैं। प्रभु की कृपा से, पुण्योदय से अपने ने यह मानव जीवन प्राप्त किया है, फिर भी हम अपने परलोक की चिन्ता नहीं करते हैं। कहा भी है—

चला विभूतिः क्षणभङ्गि यौवनं
कृतान्त दन्तान्तर्वर्ति जीवितम्।

तथाप्यनज्ञा परलोकसाधने
नृणामहो विस्मयकारि चेष्टितम् ॥

विभूति चचल है, यौवन क्षणभगुर है, जीवन काल के दाँतों में है, तो भी लोग परलोक-साधना की परवाह नहीं करते। मनुष्यों की यह चेष्टा विस्मयकारक है।

बन्धुओ! नैतिकता और धार्मिकता जीवन-रथ के दो पहिये हैं। अपने को जीवन में इन दोनों को स्थान देना है। 'सत्ता, धन और सौख्य के मद में अन्धा नहीं बनना है। इन सब का उपयोग करते हुए भी इनकी चकाचौंध में नहीं फँसना है। जीवन में प्राप्त अवसर का जो उपयोग कर लेता है, चूकता नहीं है वही चतुर कहलाता है। इसलिये अपने लिये यही श्रेयस्कर है कि अपन विनाश के मार्ग को छोड़ कर विकास के मार्ग को अपनावें।

तत्वार्थ सूत्र में कहा है कि—'*इच्छा-निरोधस्तप*''—इच्छा के निरोध को या चाह की रोक को ही तप कहा है। अपन सांसारिक आवश्यकताओं को कम करें और अध्यात्म ज्ञान की भूख को बढ़ावें। वृत्तियों की पूर्ति करना असंभव है। इच्छाओं की पूर्ति नहीं होने के कारण धनी और गरीब दोनों दुखी हैं। हमारे देश में भी अशान्ति का कारण देशवासियों की बढ़ती हुई आवश्यकतायें और इच्छाएँ हैं। अपन जितनी सादगी और सरलता से रहेंगे फैशन को जितना कम करेंगे उस हद तक

अपने देश का मध्यम वग सुखी होगा। मध्यम वग आज पिस रहा है। श्रीमतों का उनकी चिंता नहीं है। ठंडी हवा में रहने वालों को गरम हवा में रहने वालों से क्या वास्ता ? चार शाक के साथ दो वक्त भोजन करने वाले, दो बार चाय दूध और फल खाने वालों को गरीबों की मोटी रोटी और तुअर की दाल का अनुभव कैसे हो सकता है ?

समाज के कर्णधारो ! श्रीमंतो ! मेरा नम्र निवेदन है कि धार्मिक प्रवृत्तियों के साथ साथ अपने गरीब भाइ, बहिनो, बच्चों और असहाय वृद्धों एवं विधवाओं की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। उनके पिता और पुत्र बन कर तथा उनकी गरीबी को दूर करके उनके दुख को हलका करना चाहिये। उन बालकों की ओर ध्यान देना चाहिये जिनके मां बाप उनको शिक्षा दिलाने में असमर्थ हैं। अगर हर एक श्रीमंत एक एक गरीब परिवार का भार उठाले तो भारत से दरिद्रता शीघ्र ही समाप्त हो सकती है। गरीबों को उठाने का काम श्रीमंतों को अपने हाथ में ले लेना चाहिये। अगर पचास रूपये गज का कपड़ा नहीं पहन कर पच्चीस रूपे बचाकर किसी गरीब को दे देंगे तो उनका महीने भर का खर्चा चल सकता है।

जैन या वैष्णव कोई धर्म यह नहीं कहता है कि पशु, पक्षी, कीड़े मकोड़े नारायण बन सकते हैं। दोनों धर्म मानते हैं कि नारायण बनने के लिये नर देह धारण करना ही पड़ता है। मधुपक्षी ! जो अध्ययन शील हैं, तत्व को पहचानते हैं उन्हें

तो ये दोनों धर्म 'एक सूरत की दो फांक' मालूम होते हैं। ये दोनों धर्म हमारी दो आँखें हैं। कहा भी है—

श्रूयतां धर्म सर्वस्व, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

सब धर्मों को सुनो और उनके सार को अपने मन में रक्खो। सब धर्मों का सार यही है कि जो व्यवहार तुम अपने लिये अनुकूल नहीं समझते हो, वही व्यवहार दूसरों के प्रति मत करो।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दान, दया, दम और शांति यही सब धर्मों का मूल मंत्र है। राष्ट्रपिता महात्माजी ने अहिंसा के बल पर ही देश की स्वतन्त्रता प्राप्त की है। अहिंसा शब्द तो छोटा है परन्तु उसकी गहराई समुद्र के समान अपार है। अहिंसा महादेवी जिसके हृदय में विराजमान हो जाती है, उसके हृदय में द्वेष, विश्वास घात, निंदा, तिरस्कार झूठ चोरी, दगा आदि कूड़ा कचरा नहीं रह सकते हैं। सूर्योदय की वेला में रात्रि अपना सब कुछ समेट कर चला जाती है। उसी प्रकार जिसके हृदय में अहिंसा प्रकट होती है वहां से ईर्ष्या द्वेषादि सब कषाय और विकार दूर हो जाते हैं और वह समस्त प्राणियों का मित्र बन जाता है। तपोवन में ऋषियों के सामने शेर और बकरी निडर होकर रहते थे तथा तीर्थंकर भगवंतों के समवसरण में विरोधी हिंसक प्रवृत्ति वाले शेर, हरिण, गरुड़,

सर्प आदि साथ साथ बैठते थे। यह है अहिंसा की महिमा, अहिंसा का प्रताप।

बधुओ! इन्सान वही है जिसको ज्ञान है, अपना मान है और जो शान से रहता है। जिसको वास्तविकता का ज्ञान नहीं है, जिसे अपने कर्तव्य का भान नहा है और जो नर जीवन के महत्व को समझ कर शान से नहीं रहता है, उसका जीना भी क्या जाना? भाइयो! अपन दूसरों को जिला कर जीने की कला सीखें। धन का दान करते हुए भी अपन अपनी बुद्धि का, ज्ञान का, तथा धर्म का भी दान करना सीखें। अगर कोई अधर्म का आचरण करता है तो उसे धर्म का मार्ग बतलाना धर्म का दान है। धर्म वही है जो दुर्गति में पड़ती हुई आत्मा को उठाता है। धर्म वही जो पतन के रास्ते पर जाते हुए को बचाता है।

जिसके पास धन, सत्ता, शिक्षा आदि का बाहुल्य होता है, उन्हें उसका अजीर्ण हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों को अपने कर्तव्यों के प्रति अपने स्व विकास के प्रति रुचि कम हो जाती है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में एक के बाद एक वर्ष बीतता जाता है और अंत में सब कुछ छोड़कर खाली हाथों उसे चला जाना पड़ता है। ऐसे व्यक्तियों की '*सुबह होती है शाम होती है, यूंही उम्र तमाम होती है।*' उनके जीवन के कई काम अधूरे रह जाते हैं, कई फेक्ट्रियों की नींवें भी अधूरी रह जाती हैं। वे जाना नहीं चाहते फिर भी जाना पड़ता है। क्या करें? उस अदृश्य शक्ति के सामने किसी का बस नहीं चलता है।

एक राजा था जिसका अधिकांश समय सांसारिक-भोग विलासों में व्यतीत होता था। एक समय एक ज्ञानी मुनि उसके नगर में पधारे। राजा ने उनसे पूछा कि हे महाराज ! अब मेरी उम्र कितनी बाकी है और मैं मर कर कहां जाऊंगा ? मुनि महा राज ने उत्तर दिया कि हे राजन्। इन प्रश्नों का उत्तर पाने का आग्रह मत करो। परन्तु अंत में राजा के अत्यन्त आग्रह पर मुनि ने बतलाया कि आज के सातवें दिन बिजली गिरने से आपकी मृत्यु होगी और आप अपने महल की गंदे पानी की मोरी में पचरंगी कीड़े के रूप में उत्पन्न होंगे।

राजा ने कहा कि हे मुनिवर ! मैं तो राजा हूँ मैं ऐसी गति में कैसे जा सकता हूँ ? मुनि ने उत्तर दिया कि हे राजन् ! कर्म के सामने किसी की नहीं चलती है। वहां यह नहीं पूछा जाता है कि आप कौन है बल्कि यह पूछा जाता है कि आपने क्या किया है ? कहा है—'पांचे छ जीव एकलो रे, भोगीश तो पण एक।'

राजा ने बिजली से बचने के लिए गुफा में प्रवेश किया। परन्तु जो होना होता है, वह होकर रहता है। गुफा में अंधकार होने से समय का ध्यान नहीं रहा। राजा ने सातवें दिन को आठवां दिन मान कर गुफा से बाहर निकलने का निश्चय किया ज्यों ही राजा ने गुफा से बाहर पैर रक्खा कि जोर से बिजली कड़क कर गिरी और राजा की वहीं ही तुरन्त मृत्यु हो गई।

गुफा-प्रवेश के पूर्व राजा ने अपने पुत्र को कह दिया था कि अगर मैं सातवें दिन मर गया तो महल की मोरी में पंचरंगी

कीड़ा बन कर उत्पन्न होऊंगा। इसलिये मेरी इच्छा है कि तुम मुझे (पवरक्षी कीड़े को) इच्छा हो मार डालना जिससे मेरी गति शीघ्र हो बदल जायगी। राजा का पुत्र जीवों का अभय दान दन के पक्ष में था, क्योंकि अभयदान सब दानों में श्रेष्ठ होता है। कहा भी है—

जीवाना रक्षण श्रेष्ठ जीवा जीवितकांक्षिण' ।
तस्मात्समस्तदानानाम् अभयदानं प्रशस्यते ॥
यो यत्र जायते जन्तु' स तत्र रमते चिरम् ।
तत' सर्वेषु भूतेषु, दयां कुर्वन्ति साधवः ॥

जीवों की रक्षा करना उत्तम कार्य है क्योंकि प्रत्येक जीव जीवित रहने की इच्छा रखता है। इसलिए सब दानों में अभय दान प्रशंसा योग्य है। जो प्राणी जहां उत्पन्न होता है वहां वह लम्बे समय तक आनन्द भोगता है। इस कारण उत्तम पुरुष सब प्राणियों के प्रति दया-भाव रखते हैं।

पिता की मृत्यु के बाद अनिच्छा से केवल अपने पिता की अन्तिम इच्छा को पूरी करने की एव उनकी सद्गति करने की दृष्टि से राज-पुत्र प्रतिदिन मोरी में कीड़े को देखता। कुछ दिनों बाद कीड़ा बड़ा होने पर नजर आया। परन्तु जैसे ही वह उसकी ओर जाता पांव की आहट पाकर पानी में चला जाता। कीड़ा मरना नहीं चाहता था, क्योंकि उसे अपनी जान प्यारी थी। कहा भी है—

अमेध्यमध्ये कीटस्य, सुरेन्द्रस्य सुरालये ।
समाना जीविताकांक्षा, तुल्यं मृत्युभयं द्वयोः ॥

विष्टा में पड़ा हुआ कीड़ा और देवलोक का इन्द्र, दोनों की जीवित रहने की इच्छा एक समान है। इसलिये मृत्यु का भय दोनों के लिये समान है।

बन्धुजनो ! जिस शरीर में प्राणी जन्म लेता है, उसे वही शरीर प्रिय हो जाता है। उस शरीर को वह छोड़ना नहीं चाहता है। "मृत्यु दुःख आदि जो भी चीज हम प्यारी नहीं लगती, वह दूसरा को प्यारी नहीं हो सकती है।" इस मूल मन्त्र को यदि अपन याद रखेंगे तो हम मानवता को प्राप्त कर सकेंगे। प्राणी मानव तो बन सकता है, पर मानवता पाना दुर्लभ है।

पूज्य सागरमलजी महाराज ने ४६ दिन तप-जप में लगाया है। आपने तो पूर्व में ६३ दिन की तपस्या भी की है दीक्षा लेने के बाद प्रति वर्ष आप तपस्या करते आ रहे हैं। इस ईश्वरीय वरदान से आपका आत्म-विकास निरन्तर हो रहा है। आपकी भावना सदा ऐसी बनी रहे। आप तो अपनी आत्म-शुद्धि और आत्म-विकास कर हो रहे हैं। मुझे भी आप आशीर्वाद दें कि, मैं भी तपस्या करके कर्मों को क्षय करके अपनी आत्मा की शुद्धि करके और आत्मा का भान करके अपने को लाभान्वित करके तथा सदा के लिये जन्म-मरण की भ्रान्ति को नष्ट करके अमर बनूँ।

ॐ शांति शांति शांति

नीमचौक स्थानक,
रतलाम २-६-६३,

ठेकेदार तो हम बन गये हैं। वीतराग शासन तो सिद्धांतों का है, ठेकेदारी का नहीं है। कोई भी व्यक्ति उन सिद्धान्तों का पालन करे वह उसका अधिकारी बन जाता है और 'नमो सिद्धाणं' तक पहुँच जाता है। "नमो आयरियाणं" और "नमो उवज्झायाणं" में भी किसी का नाम नहीं है। यहां तक कि "नमो लोए सव्व साहूणं" में भी किसी का नाम नहीं है। अमुक लिंग या गच्छ का या अमुक पंथ का साधु। साधु कौन ? *"स्वपर कार्याणि साधयति इति साधु"* जो आत्मा के कार्य को साधे, ब्रह्मचारी जीवन में रहे अपरिग्रह का पाले, अहिंसा, सत्य, अस्तेय को जीवन में उतारें वे समस्त साधु हमारे वन्दनीय हैं। मुझे तो बड़ा हर्ष होता है कि क्या उदारता रक्खी है वीतराग शासन ने, जैन धर्म ने। इतना दरियादिला आपको कहीं दूसरी जगह नहीं मिलेगी।

बन्धुओ ! नव तत्व में पन्द्रह भेद आये हैं, सिद्ध होने के, मोक्ष जाने के, मुक्त होने के यानि परमात्मा बनने के। उनमें यह नहीं लिखा है कि अमुक लिंग का हो तो ही मोक्ष जावेगा। शासन बनाने वाले बड़े दीर्घ दृष्टि वाले सर्वज्ञ तत्व को धारण करने वाले थे। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि चाहे जैन लिंग हो, चाहे जैनेतर लिंग हो, सफेद कपड़े हों या भगवे कपड़े हों, सभी को मोक्ष मिलता है। भगवे कपड़े का बहिष्कार वीतराग शासन ने, जैन दर्शन ने नहीं किया। परन्तु आजकल तो बात ही निराली है। यहां तो एक रंग के कपड़ों में भी बहिष्कार की प्रवृत्तियां

कि—हे तापसो ! आप उधर मत बैठो, यह तो केवलियों के बैठने का स्थान है । भगवान महावीर ने मुस्करा कर कहा कि—हे गौतम ! इन केवलियों की आशातना मत करो, इन्हें केवलज्ञान हो गया है, महाज्ञान हो गया है । गौतम चौंक और बोले कि हे प्रभु ! मुझे तो इतने वर्ष हो गये फिर भी केवलज्ञान नहीं हुआ और इन तापसों को एकदम केवलज्ञान कैसे हो गया ? भगवान महावीर ने गौतम की शङ्का का समाधान करते हुए कहा कि—हे गौतम ! तुम्हारे मोह ने अभी तुम्हें केवलज्ञान प्राप्ति से रोक रक्खा है । गौतम ने पूछा—हे प्रभु ! मुझे किसका मोह है ? भगवान ने फरमाया कि—हे गौतम ! तुम्हारा मुझ पर मोह है । यही मोह तेरे केवलज्ञान के, महाज्ञान के मार्ग में बाधा है ।

बन्धुओ ! पन्द्रह सौ भगवे कपड़े पहने हुए तापसों को केवलज्ञान हो गया, यह बात जैन शास्त्र कहते हैं । अब कोई कहे कि जैनियों को तो वैष्णवों से द्वेष है तो यह बात कैसे मानी जा सकती है ? मुझे तो जैन और वैष्णव 'एक मूग की दो फाड़' नजर आते हैं ।

तापस गौतम गणधर की ओर क्यों आकर्षित हुए ? वे उनके रूप रङ्ग पर आकर्षित नहीं हुए, बल्कि वे उनके गुणों की ओर आकर्षित हुए । सज्जन विद्वान और ज्ञानी व्यक्ति गुण ग्राही होते हैं । तापस तो स्वयं तपे तपाये थे, चरित्रवान थे, गौतम के सम्पर्क में आने के बाद कुछ आवरण शेष थे, वे नष्ट हो गये ।

हमारी आत्मा पर भी कर्मों के पर्दे पड़े हैं, अज्ञान के पर्दे पड़े हैं। प्रत्येक आत्मा के आवरण भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। किसी के कम गहरे किसी के ज्यादा गहरे होते हैं। जितने भव ज्यादा होते हैं उतने ही आवरण मोटे होते हैं और जितने भव कम होते हैं उतने ही आवरण कम होते हैं। इन आवरणों को हटाया सकता है।

हमारी दुष्ट वृत्तियां स्वय का मोह, स्वय का अज्ञान जड़ और चेतन के भेद को नहीं समझना आदि ये कारण हैं जो हम ब्रह्म ज्ञान, केवल ज्ञान की प्राप्ति से रोकते हैं। बधुजनो ! सत्य को पहचानो। जो कुछ थोड़ा सा जीवन है उसे हाय हाय, धांय धांय करके पूरा नहीं करना चाहिये। समय का महत्व है, इसका उपयोग महत्वपूर्ण कार्य करने में होना चाहिये। सामान्य काम तो पशु पक्षी, अनपढ़ अशिक्षित भी करते हैं। जो विवेकी हैं धर्मज्ञ हैं, कुलीन और खानदानी हैं उन्होंने भी अगर अपने जीवन का विकास नहीं किया तो सब किया कराया निष्फल है। जीवन विकास के लिये चरित्र-निर्माण आवश्यक है। चरित्र-निर्माण के लिये दो मार्ग बतलाये गये हैं एक है विधिमार्ग और दूसरा है निषेध मार्ग। हमें झूठ नहीं बोलना चाहिये चोरी नहीं करना चाहिये आदि अकर्तव्य हैं यानि निषेधात्मक बातें हैं। हमें परोपकार करना चाहिये, ईश्वर भक्ति करना चाहिये, दूसरों के दुःख दर्द में काम आना चाहिये, सदाचार से रहना चाहिये कर्तव्य हैं यानि यह विधि मार्ग है। आप एक डायरी रखें तथा

उसमें जीवन को सुदर, आदर्श और सयमी बनाने के लिये शुद्ध नियम लिखिये फिर प्रतिदिन उन नियमों का पालन करने की पूरी कोशिश कीजिये। अभ्यास से वे आपका स्वभाव बन जावेंगे फिर उन नियमों का पालन करने के लिये आपको प्रयत्न नही करना पड़ेगा।

मानव को बाधने के लिये सांकलों की आवश्यकता नही होती है। मानव के लिये कोई बधन हैं तो मर्यादायें हैं। भगवान रामचन्द्र को मर्यादा-पुरुषोत्तम कहते हैं। मानव मर्यादाओं में रह कर ही मानवता को प्राप्त कर सकता है। मर्यादाओं के बधन से ही मानव का पतन रुकता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी को उनकी माताजी ने मांस नही खाने, शराब नहीं पीने तथा परस्त्री-गमन नही करने की मर्यादाओं में बाध कर ही विदेश जाने की आज्ञा प्रदान की थी। बधुजनो! भविष्य में पतन को रोकने के लिये मर्यादा अमोघ मित्र हैं। अत जीवन को मर्यादित करके अनत सुख का पथ प्रशस्त करने का सतत प्रयत्न करें।

पिछले तीन वर्षों से चरित्र निर्माण सघ का निर्माण हुआ है। इसकी नियमावली और प्रतिज्ञा पत्र आप पढ़ें। इन नियमों को पालन करने का उपदेश सभी धर्म देते हैं। ये नियम वे सीढ़ियां है जिन पर चढ़कर मानव अपनी चित्त शुद्धि करके आत्म विकास की ओर बढ़ता है।

भगवान महावीर का सदेश है कि '*जिस आत्मा में राग*

रूप है, जिस आत्मा में क्लेश और भेदभाव है, जिस आत्मा के अन्दर लड़ाई झगड़े और धर्म रूप है तथा जिस आत्मा में किसी भी गुणी के प्रति, किसी भी त्यागी के प्रति, तपस्वी के प्रति अनादर की भावना है, वह आत्मा कभी भी गुणवान और शुद्ध नहीं बन सकता है।'

हम सब समकित लेते हैं, परन्तु क्या हमने समकित के महत्व को समझा है। समकित में पाँच बातों का समावेश होता है जिसमें प्रथम स्थान 'सम' का है। 'सम' का अर्थ है समभाव शांति, अकषाय भाव यानि राग द्वेष का अभाव या दूसरे शब्दों में विश्व के साथ मैत्री भाव। जब हमारे हृदय में विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री भाव उत्पन्न होगा, तभी सम्यग् दर्शन प्राप्त होगा। यदि सम्यग दर्शन की प्राप्ति की अभिलाषा है तो मन-मंदिर के पट खोल दो, हृदय के द्वार खोलकर उसमें जो कूड़ा करकट भरा है उसे निकाल कर फैंक दो।

आप सब कहते हैं—'*सव्वस्स समण संघस्स*' सर्व श्रमण संघ के साथ मेरा अविनय हुआ हो तो क्षमापना करता हूं और '*सव्वस्स जीव रासिस्स*' कह कर सब जीव राशियों से क्षमापना करते हैं। जगत के सभी प्राणियों से क्षमापना करने वाले महानुभाव, धर्म भेद से, गच्छ भेद से, पंथ भेद से, वेश भेद से सिद्धांत भेद से क्या किसी से दुश्मनी कर सकता है? किसी के साथ वैर भाव रख सकता है? कभी नहीं, कभी नहीं कभी नहीं तीन   नहीं रख सकते हैं।

बंधुजनो ! अंत में हमारा सदाचार, हमारा धर्मप्रेम, हमारी ईश्वर निष्ठा और हमारी आत्म-चेतना ही हमारे काम आने वाली है। तुलसीदासजी ने कहा भी है—

तुलसी साथी विपत के विद्या, विनय, विवेक।
साहस, सुकृत, सत्य व्रत, राम भरोसो एक ॥

इसलिए, राग द्वेष को मिटाओ, आंखों से, वाणी से और सब में प्रेम का अमृत बरसाते हुए अपने चरित्र का निर्माण करो, समाज का निर्माण करो और देश का निर्माण करो। यही वह कसौटी है जिससे महा विदेह का टिकिट मिलेगा और जहां से सिद्धशिला की प्राप्ति होगी।

ॐ शांति शांति शांति

त्रिपोलिया
रतलाम ७ ६ ६३

अकबर प्रतिबोधक युग-प्रधान आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी

सं० १ ७० की आसोज बदि २ को हमारे भारत में से एक चमकता हीरा उठ गया, ज्योतिपुंज सूर्य अस्त हो गया। इस दिन अकबर प्रतिबोधक आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी का स्वर्गवास हुआ था। इनकी जयन्ती हम यहां चार दिन से मना रहे हैं।

इस पुनीत पर्व के उपलक्ष में अपन सब लोग स्नेहपूर्वक यहां एकत्रित हुए हैं, इसकी मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। संसार में यदि जीवन का कोई रस है तो वह है स्नेह। स्नेह के बिना जीवन रूखा है, स्नेह के बिना दीपक कभी प्रकाश नहीं दे सकता है, स्नेह के बिना कभी जीवन में सफलता नहीं मिल सकती है। ...स्वाभाविक है और द्वेष वैभाविक है।

जब तक स्नेहमयी, प्रममयी सद्भावमयी रहता है, उस वक्त तक यह आत्मा, आत्मा है। वह मानव के रूप में है, महादेव के रूप में है और जिस क्षण द्वेष करता है, कषाय करता है, कलुषित भावों का पोषण करता है उस वक्त वह आत्मा अपने आत्म-स्वभाव को छोड़ देता है और दानव बन जाता है।

स्नेह से छलकते हुए हृदय को लेकर आज की जयन्ती के चरित्र नायक आचार्य जिनचन्द्रसूरि सम्राट अकबर के दरबार में स्नेह-दीप जलाने गये थे। अहिंसा का पूर्ण रूप से जीवन में पालन करते हुए विश्व में स्नेह की नदियां बहाने की भावना लेकर वे शाहंशाह को उपदेश देने गये थे और सम्राट अकबर तो धन्य हो गया था, ऐसे गुरु के दर्शन पाकर। अहिंसा महादेवी सम्राट अकबर के हृदय में ऐसा बैठा कि वह तो अहिंसा से ओत प्रोत हो गया। उनके जीवन की दृष्टि ही बदल गई। उनके जीवन में सरलता, सहिष्णुता और उदारता ने घर कर लिया और वह स्वयं जीव हिंसा का घोर विरोधी हो गया। सम्राट ने स्वयं मांस भक्षण बन्द कर दिया और राज्य में भी जीवहिंसा समय समय पर बन्द करने के आदेश दे दिये।

सम्राट अकबर को युवावस्था में उन्ह जैन धर्म का बोध आचार्य हीरविजयसूरिजी ने कराया था। परन्तु उत्तरकाल में आचार्य जिनचन्द्रसूरि का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इन दोनों आचार्यों का प्रभाव सम्राट पर इतना पड़ा कि वह अहिंसा का पोषक बन गया।

आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी ने सम्राट अकबर को प्रतिबोध देकर समझाया कि वस्तुत आत्मा न पुरुष है न स्त्री न निर्बल है न सबल, न धनी है न रंक क्योंकि ये सब अवस्थायें तो कर्म जनित हैं। आत्मा तो शुद्ध सच्चिदानन्द है। सभी आत्मायें सत्ता, द्रव्य, गुण और शक्ति की अपेक्षा से समान हैं। इसलिए सभी जीव परस्पर प्रेम के पात्र हैं। जैसे अपने को जीवन प्यारा है वैसा सभी जीवों को अपना जीवन प्यारा है और मरण भयावह है। अत उन सबको सुखपूर्वक जीने देना आत्मा का प्रथम कर्तव्य है। कहा भी है—*"परोपकार करना पुण्य कर्म है और दूसरों को पीड़ा देना पाप कर्म है।"* पशु बलि देने के सम्बन्ध में जो यह धारणा है कि उससे परमात्मा प्रसन्न होता है बिल्कुल गलत है। धर्म ग्रन्थ कुरान में भी लिखा है कि—*"पशु बलि का मांस या रक्त परमात्मा के पास नहीं पहुंचता है, परन्तु मानव का संयम पहुंचता है।"* परमात्मा के आराधक को मांस मछली, अण्डा आदि खाना मना है। धर्म ग्रन्थ कुरान का स्पष्ट आदेश है कि—*"जब धार्मिक स्थानों की यात्रा करने को निकलो, तब किसी की हिंसा मत करो।"* इस आदेश का अर्थ यही है कि परमात्मा की उपासना और जीवहिंसा एक साथ नहीं हो सकती। खुदा एवं परमात्मा के उपासक को हिंसा का त्याग करना ही होगा। अत खुदा बनने एवं परमात्म अवस्था की प्राप्ति के साधनों में *"सब जीवों के साथ मित्रता या प्रेम का व्यवहार"* सर्व प्रथम और अत्यावश्यक साधन है। इसी साधन या धर्म को *"अहिंसा"* भी कहा है। अपने मनोभावों द्वारा

किसी प्राणी का अहित चिन्तन करने को भी जैन दर्शन में *'हिंसा'* का नाम दिया है।

जिस ग्राम या देश का शासक अपनी प्रजा को सुखी नहीं रख सकता उनके प्रति वात्सल्य नहीं रखता और राज्य में नाना प्रकार के कर लगा देता है, उस राज्य में शांति और सुख की आशा भी नहीं की जा सकती है। इसलिये अपने आधिपत्य में रहे हुए समस्त प्राणी जिससे शांति पूर्वक जीवन निर्वाह कर सकें वैसा निरंतर ध्यान रखना चाहिये। *जो दूसरा को अभय देता है वह स्वय सदा के लिय अभय हो जाता है।'* ससार में जहाँ जहाँ दूसरों को कष्ट पहुचाने की नीति है वहां अशान्ति और कलह सदा के लिये निवास करते हैं। इसलिये राजा को प्रजा की सुख शांति और उनके कल्याण के लिये सदा जागरूक रहना चाहिये।

किसी को अपने धम से छुडाना और उसके धम पालन में बाधा देकर धार्मिक आघात पहुचाना शासक का उचित नहीं है। शासक को धार्मिक सहिष्णुता का गुण अवश्य अपनाना चाहिये। धर्म ग्रथ कुरान में भी लिखा है कि *'इससे बढ़कर अन्यायी और कौन हो सकता है जो परमात्मा के उपासना के स्थाना म किसी को स्मरण और कीर्तन करने से रोके अथवा उनका नष्ट करने का प्रयत्न करे जो लोग* ऐसा *जुल्म या उप द्रव करते है वास्तव में वे इस योग्य नहीं है कि वे परमात्मा की उपासना के स्थाना म कदम रक्खे।'*

प्रत्येक व्यक्ति को उदार वृत्ति धारण करना चाहिये। अहिंसा रूपा सद्गुण को धारण करने से श्री वृद्धि होती है और समस्त प्राणियों का आशीर्वाद मिलता है तथा वह धन्य भाग्य होता है।

सूरिजी के अहिंसात्मक उपदेशों को श्रवण कर सम्राट ने प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ला ९ से १५ तक बारह सूबे में समस्त जीवों का अभय दान देने के लिये शाही फरमान जारी किये इन फरमानों में से मुल्तान के सूबे का फरमान गुम जाने से सं. १६६०-६१ (ता. २१ खुरदाद इलाही सन ?) में इसकी पुनरावृत्ति करते हुए फिर से एक फरमान श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को सम्राट ने दिया था।

बंधुओ ! मूल में यह फरमान फारसी में है पर आपको समझ में आ जावे इसलिये इसका हिन्दी अनुवाद देते हैं—

शाही फरमान का हिन्दी अनुवाद

फर्मान जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

पहले शुभ चिंतक, तपस्वी, जयचंद (जिनचंद) सूरि, खरतर (गच्छ) हमारे यहां रहते थे। तब उनकी भगवद्भक्ति प्रकट हुई, जब हमने उनको अपनी बड़ी मेहरबानियों में मिला लिया। उन्होंने कहा था कि इससे पहले हीरविजयसूरि ने उपस्थित होकर उपदेश देने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल बारह दिन मांगे थे, जिसमें बादशाही मुल्कों में कोई जीव मारा न जाय और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवों को कष्ट न दे। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो गई थी। अब मैं भी आशा करता हूं कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभ चिंतक के वास्ते हो जाय। इसलिये हमने अपनी आम दया से हुक्म फरमा दिया कि आषाढ़ शुक्ला नवमी से पूर्णिमा तक साल में कोई जीव मारा न जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल बात तो यह है कि जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भांति भांति के पदार्थ उपजाये तब वह कभी किसी जानवर को दुःख न दे और अपने पेट को पशुओं की कब्र न बनावे। परन्तु कुछ कारणों से अगले बुद्धिमानों ने वैसी तजवीज की थी। इन दिनों आचार्य जिनसिंह उर्फ मानसिंह ने अर्ज पहुंचाई कि पहले जो लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है इसलिये हमने उस फरमान के अनुसार यह नया फरमान इनायत किया है। चाहिये कि जैसा लिख दिया गया है वैसा ही इस आज्ञा का अमल किया जाये। इस विषय में बहुत बड़ी कोशिश और ताकीद समझ कर इसके नियमों में उलट फेर न होने दें। ता० ३१ खुरदाद इलाही सन् ४९।

हजरत बादशाह के पास रहने वाले मौलवियों को हुक्म पहुंचाने में उमदा अमीर और मददगार राय मनोहर की चौकी और ख्वाजा लालचन्द की वाकिया लिखने के बारे में किया गया।

युगप्रधान आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी का केवल सम्राट अकबर पर ही प्रभाव नहीं था बल्कि उनके पुत्र पर भी बड़ा भारी असर था। सम्राट अकबर की मृत्यु के बाद जब उसका पुत्र सम्राट जहांगीर के नाम से गद्दी पर बैठा तब उसने सूरिजी के प्रति अपनी गहरी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की थी। उसने अपना 'आत्मजीवन' में उन बारह आज्ञाओं का जिक्र किया है, जो अपने राज तिलक के बाद प्रसारित की थी। इसमें ११ वीं आज्ञा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"मेरे जन्म मास में सारे राज्य में मांसाहार का निषेध रहेगा। मेरे राज्याभिषेक के दिन अर्थात् वृहस्पतिवार और रविवार के दिन कोई मांसाहार नहीं करेगा।"

महानुभावो! अकबर बादशाह को प्रभावित करने का श्रेय जिनचंद्र सूरिजी को मिला, वह किसके बल पर? वह साधना के बल पर, ईश्वर निष्ठा के बल पर योग के बल पर। उनकी आत्म शक्ति इतनी विकसित थी कि वे मनोगत भावों को जान लेते थे। एक समय बादशाह ने सूरिजी की परीक्षा लेने के लिये जमीन खोदकर उसमें बकरी रख कर जमीन को बराबर

करदी तथा सूरिजी के लिए उस पर से पधारने का रास्त बनाया। परन्तु योग बल से सूरिजी ने सारी स्थिति समझ ली उन्होंने कहा कि इसके नीचे तीन पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव हैं उन प पांव रखकर हम आगे कैसे बढ़ सक्ते हैं? बादशाह के आस पास ऐसे भी लोग थे जिन्हें सूरिजी से ईर्ष्या थी। उनके चेह सूरिजी के वचन सुनकर खिल गये। उन्हें विश्वास था कि आ सूरिजी का सम्मान समाप्त होने वाला है। जब देखा गया । सचमुच ही तीन जीव निकले। बकरी गर्भवती थी और उस दो बच्चों को जन्म दे दिया था। यह कोई अचरज की बात न है। जो अष्टांग निमित्त का ज्ञाता होता है वह भूत, भवि और वर्तमान सबको जानता है।

बन्धुओ! हर एक महापुरुष का आदर करो। ऐसे भा मन में मत लाओ कि जैन के महापुरुष तो हमारे हैं और वैष्ण के महापुरुष हमारे नहीं हैं। इस दृष्टिकोण को बदल दो। मह पुरुष किसी भी मजहब के हों, हमारे पूजनीय हैं। हमारे सामाजिक कार्यों में, विवाह में लेन देन में तो कहीं द्वेष नहीं होता, परन्तु जहां धर्म का नाम आता है, हे भगवान्! न जाने क्या होता है सब पीला पीला दिखने लगता है। आप होली मत जलाओ, पर घर घर में दीपावली के दीप जलाओ। कैंची मत बनो सुई बन कर फटे को जोड़ो। दूध और पानी के समान मिल कर एक बन जाओ।

बधुजनो! युग प्रधान जिनचंद्र सूरिजी को मंत्री, कर्म चन्द्जी बाछावत ने अकबर बादशाह से मिलाया और तीनों के

प्रत्नों से क्या हुआ ? अरे, सारे देश में अहिंसा का झंडा लह गया, गौरक्षा के बाजे बने, मांसाहार को अल्प किया और शाकाहार को बढ़ावा दिया। तो फिर आज हम साधु और गृहस्थ मिलकर क्या फिर से अहिंसा का झंडा नहीं फहरा सकते ? जरूर फहरा सकते हैं। अभी अभी तो राष्ट्रपिता गांधीजी ने अहिंसा के बल पर देश को स्वतन्त्रता दिलाई है। कुछ बहुत ज्यादा समय तो नहीं हो गया है। पर उनकी मृत्यु के बाद हमारे में हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ी है लोगों का झुकाव मांसाहार की ओर बढ़ रहा है। याद रखिये ! आचार्य जिनचंद्र सूरिजी के जीवन म हमें शिक्षा लेकर पुन पूरे जोश के साथ देश में अहिंसा की भावना फैलाना है और जीव हिंसा को मिटाने का दृढ़ संकल्प

सन्त विनोबा

आज हम एक ऐसे महापुरुष की जयंती मनाने जा रहे हैं जिसने अपने तन को, अपनी बुद्धि को, अपने वचन व अपने ज्ञान को और अपने सर्वस्व को अपने पेट के लिये नहीं, अपने परिवार के लिए नहीं किन्तु विश्व के लिये समर्पित कर दिया है। संत वही कहलाते हैं जिन्होंने संकीर्णता को तोड़ कर, विश्व-परिवार की भावनायें उत्पन्न की। अगर सेवा करना है तो विश्व के प्राणी मात्र के साथ प्रेम का नाता जोड़ो। सेवा की भावना की जड़ में है आत्मीयता। प्रीति के बिना कभी भक्ति नहीं चलती, स्नेह के बिना चिंतन नहीं होता। जिसके हृदय में स्नेह का स्रोत सूख गया है वह किसी की भी सेवा नहीं कर

सकता है, यहां तक कि स्नेह के अभाव में सगा भाई भी सगे भाई की मदद नहीं करता है।

इतिहास में हमने पढ़ा है कि दुर्योधन पांडवों को पाँच गांव तो क्या एक इंच भी जमीन देने को तय्यार नहीं था, सो, उसका अंत महाभारत के युद्ध में हुआ। आज भी छोटी छोटी बातों पर, जमीन के छोटे छोटे टुकड़ों पर लड़ाई, झगड़ा, क्लेश और मुकदमेबाजी होती है। पर आज हम क्या देख रहे हैं? क्या सुन रहे हैं? बिना किसी संबंध के, बिना किसी नाते के, प्रान्तीय संबंध भी नहीं जातीय संबंध भी नहीं, धार्मिक संबंध भी नहीं फिर भी सहर्ष आत्मीयता से मानवता की सेवा करने के लिए, मानव की भूख मिटाने के लिये, मानव के दिल में अशांति की ज्वाला धधक रही है उसे शांत करने के लिये भूमिपति भूमिहीनों को अपनी जमीन सहर्ष अर्पित करके अपने को धन्य मान रहे हैं। यह हृदय परिवर्तन, यह दानवता के स्थान पर मानवता का पाठ, किसने पढ़ाया? संत विनोबाजी ने, जिन्होंने मानवों के हृदय में करुणा को जागृत कर दिया।

संत विनोबाजी में आज के नौजवानों से ज्यादा फुर्ती है। वे शरीर से वृद्ध हैं, यह शरीर रूपी भवन जीर्ण हो रहा है परन्तु उसमें रहने वाली आत्मा तो आज भी जवान है, जरा रहित है। आत्मा का लक्षण क्या है? आगम में कहा है-'णाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा, वीरियं उवओगो य एअं जीवस्स

महावीर कहते हैं कि 'ज्ञान,

उपयोग, तप, मा शक्ति सपन्न जो चेन्द्र है वही जीव है, वही आत्मा है।' वही आत्मा सच्चिदानन्द है, वही आत्मा आनंदघन है।

भगवान महावीर को श्रमण कहा है। श्रमण की व्याख्या कितनी सुन्दर है-'श्रमं करोतीति श्रमण' जो श्रम करे वह श्रमण। श्रम दो प्रकार का होता है-शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम। इस श्रम का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। जिन्होंने इसका सदुपयोग किया व महामानव बन गये और जिन्होंने दुरुपयोग किया व दानव बने। जिन्होंने सदुपयोग किया वे सर्वोदय में पहुँचे जिन्होंने दुरुपयोग किया वे पतन में पहुचे। पतन और उत्थान हमारे अंदर ही है। पर स्वार्थ की आँधी में मनुष्य इतना अंधा हो जाता है कि उसे स्व निर्माण सूझता तक नहीं है। धार्मिक क्रिया कांड तो दो चार हम कर लेते हैं पर धर्म का आचरण नहीं करते। धर्म और जीवन जुदा जुदा नहीं है। मिश्री और मिश्री की मिठास कभी जुदा नहीं हो सकते। मंदिर में माला जप कर धर्म कर लिया और बाहर आकर ठगाई करली। तो फिर धर्म कहां रहा? जिस मन में करुणा का अभाव है वहा धर्म जन्म नहीं ले सकता है। पत्थर में कमल पैदा नहीं हो सकते हैं।

बंधुओ! यदि हमें सर्वोदय का मार्ग अपनाना है तो अपनी शक्तियों को अपनी बुद्धियों को जरा मोड़ देना है, जीवन में नया अध्याय जोड़ देना है। जिस प्रवाह में हम बह रहे हैं उसकी दिशा बदल देना है, स्वार्थान्धता के चश्मे को उतार देना है।

दरिद्रता दो प्रकार की होती है, एक बाहरी दरिद्रता जिसे आप सब देखते हैं, और दूसरी भीतरी दरिद्रता होती है। जिसके जीवन में दया नहीं, विनय नहीं, त्याग-भावना नहीं, संयम नहीं ब्रह्मचर्य नहीं, परोपकार की भावना नहीं, वह करोड़पति होते हुए भी महा दरिद्री है। सन्तों का कहना है कि—*"जहाँ मित्रता नहीं है, वहाँ मानवता नहीं है।"* महापुरुषों ने हमेशा संसार के लिए सब कुछ त्याग किया है। भगवान महावीर ने २८-३० वर्ष की उम्र में राज्य, धन-दौलत, स्त्री-परिवार सब का त्याग किया और १२ वर्ष तक कठिन तपस्या की। इतनी तीव्र साधना के बाद जब उनका सर्वोदय (केवल-ज्ञान) प्राप्त हुआ तब उन्होंने गाँव-गाँव जाकर जो अमृत उन्हें प्राप्त हुआ था, उसका रसास्वादन सब को कराया। भगवान महावीर ने सन्त का लक्षण यह कहा है कि—*"जिसके हृदय में सारे विश्व के लिए जगह हो, प्रत्येक आत्मा के साथ आत्मा-नुभूति की दृष्टि हो। जो प्रत्येक प्राणी के अन्दर अपने आपको देखता है और उनके सुख दुःख का इस प्रकार अनुभव करता है मानो वे स्वयं उसे ही हो रहे हों।"* सन्त विनोबाजी ग्राम-ग्राम घूम रहे हैं। एक के विचारों को बदल कर दूसरे को रोटी दिला रहे हैं। एक की रोटी छीन कर दूसरे को नहीं दिला रहे हैं बल्कि उसकी रोटी सुरक्षित रखते हुए दूसरे का पेट भर सके ऐसी व्यवस्था सिखा रहे हैं।

भगवान महावीर ने गृहस्थों को यह नहीं कहा

त्यागी बन जावें बल्कि यह कहा कि वे परिग्रह-परिमाणी बन जावें। जीवन में सब वस्तुओं की मर्यादा बांध लें। धन सम्पत्ति, अन्न आदि सभी वस्तुओं की आवश्यकताओं में कमी करने पर जोर दिया। बन्धुओ ! पशुओं को दूसरों के दुख-दर्दों की परवाह नहीं होती है। परन्तु अगर अपने सामने यदि कोई दुःखी प्राणी गुजर जाय और हमारी आंखों में आंसू नहीं आवे, दिल में दर्द नहीं होवे, हम अपनी रोटी उठा कर उसे खाने को नहीं दे सके तो फिर हमारा जीवन ही क्या ? उसे क्या कहा जावे ? अगर दुखियों को देख कर आंखों में अश्रु न निकले हृदय गद्गद नहीं हुआ तो फिर वह मानव नहीं है, पत्थर है।

बधुजनो ! दान एक प्रकार का नहीं होता है। भूदान दो, वस्त्रदान दो, धन-दान दो बुद्धि दान दो, धर्मदान दो। भावनाओं को शुद्ध रखो, भावनाओं को आकाश के समान असीमित रक्खो। यद्यपि भावनाएँ असीमित होती हैं, पर कार्य अपनी शक्ति के अनुसार, अपनी योग्यतानुसार सीमित होते हैं। तीर्थंकर भगवतों ने कहा है कि *'भावना पवित्र रक्खो, विचार-धारा को गंदी मत बनाओ।'* सत विनोबा की भावना कितनी उच्च कितनी विशाल है। वे चाहते हैं कि सारे विश्व को सुखी कर दूं, सबकी रोजी रोटी की समस्या हल कर दूं। *'उदार-चरितानां वसुधैव कुटुम्बकं'* उदार पुरुषों के हृदय में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जागृत होती है। इस जागृत भावना को लेकर एक नहीं अनेक संतों, महर्षियों, योगियों, अवतारी पुरुषों तथा तीर्थंकरों

न जन्म लिया है। उन्होंने समय समय पर इस संसार को नया मार्ग और नया मोड़ दिया है। वे तो आते हैं और चले जाते हैं। किन्तु उनके द्वारा डाले गये संस्कार, उनके पद चिन्ह हजारों वर्षों तक रह जाते हैं। पर याद रखिये, जैसे जैसे समय व्यतीत होता जाता है उन पदचिन्हों पर हवा के झोंकों के कारण धूल पड़ जाता है, जो उनकी स्वच्छता को उनके प्रकाश को कम कर देता है। अस्पष्टता आ जाने से उनके पद चिन्हों पर चलने वाले भूलभुलैये में पड़ जाते हैं। तब प्रकृति कह दो, या हमारा मान्यता कह दो, कोई न कोई महापुरुष पुनः उत्पन्न होता है और उनके पद चिन्हों को पुनः यथावत स्थापित करता है। सिद्धान्त अनादि हैं वे कभी नहीं मरते हैं और न मरेंगे। अहिंसा अनादि है, सत्य अनादि है, ब्रह्मचर्य अनादि है। इन्हें न तो तीर्थंकरों ने उत्पन्न किया और न किसी अन्य महापुरुष ने उत्पन्न किया।

महानुभावो! आज के युग में संत विनोबा एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व जनता को अर्पण कर दिया है। गांधीजी के पद चिन्हों पर चलने वाले उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में विनोबाजी आज प्रेम का पाठ पढ़ा रहे हैं, सहयोग का पाठ पढ़ा रहे हैं सह अस्तित्व का पाठ पढ़ा रहे हैं। याद रखिये! बिन्दु सा भी छोटा गलत कार्य, अनैतिक कार्य का सिंधु सा व्यापक विषैला असर हो जाता है। अतः हम विवेकपूर्ण कार्य [illegible] जीवन में विषमता को कम करके

प्रेममय जीवन बनावें। अपन सब छोटे बड़े, सेठ साहूकार, श्रीमंत-गरीब, बुद्धिजावी, त्यागी और भोगी सब यह संकल्प करलें कि हमारे पास जो भी सद्भाव है उसको सब में बांटें। अभावग्रस्त लोगों के अभाव को दूर करने का सद्प्रयत्न करें। इन सत्संकल्प रूपी पुष्पों को आप संत को चढावें तभी जयति-महोत्सव सफल होगा ।

ॐ शांति शांति शांति

निपोलिया
रतलाम ११ ६ ६३

शिक्षिका---चमकती दीपिका

बहिनो ! जीवन की महत्ता आभूषणों से अलंकृत होने में नहीं होती बाहरी फैशन में नहीं होती है । जीवन की महत्ता होती है जीवन के कर्तव्य पालन से । इतिहास उनका बनता है जो अपने को समाज सेवा में, देश सेवा में लगा देते हैं जो दुखियों की सेवा में जीवन अर्पण कर देते हैं और ईश्वर भक्ति में अपने आपको समर्पित कर देते हैं ।

अभी-अभी बहिनों ने कहा कि विनोबाजी "देश सेवा को ईश्वर की सेवा मानते हैं ।" इस बात का ध्यान रहे कि देश का अर्थ जमीन नहीं, देश का अर्थ पहाड़ नहीं, देश का अर्थ

नदियाँ नहीं है। देश सेवा का अर्थ, ईश्वर सेवा का अर्थ प्रत्येक प्राणी की सेवा, प्रत्येक आत्मा की सेवा, प्रत्येक मनुष्य की सेवा है। गीता और अन्य जैन या वैष्णव शास्त्र यही मानते हैं कि प्राणी ईश्वर के अंश हैं, ईश्वर के रूप हैं, अरिहन्त के समान हैं। इसलिए महापुरुषों ने कहा कि *"प्राणियों की सेवा करना मानो ईश्वर की सेवा करना है।"*

जो शक्ति सांसारिक क्षेत्रमें विचरण करने वाली है, जन्म मरण करने वाली है, माया के जाल में बंधी हुई है वह आंशिक शक्ति है। जो आत्मा *"शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि"* बन चुका है, माया रहित, कषाय रहित, मोह और अज्ञान रहित हो चुका है उसको हम शुद्ध स्वरूप, ईश्वर मानते हैं। ईश्वर की भक्ति प्रभु का स्मरण हमारे जीवन का आधार होना चाहिये। महात्मा गांधीजी का कथन है कि—*"मैं खाये बिना रह सकता हूँ, पर ईश्वर की प्रार्थना के बिना नहीं रह सकता हूँ।"* पर आज का शिक्षित वर्ग तो ईश्वर-भक्ति, प्रभु-स्मरण को ढकोसला मानने लगा है।

कहा है *"कर्मबंधात्भवज्जीव कर्म मोक्षात् भवेत् शिव"* जब तक हम कर्म के बन्धन में फसे हैं, माया जाल में फसे हैं तब तक हम जीव कहलाते हैं और जब हम कर्म बन्धन से मुक्त हो गये, माया जाल को तोड़ डाला, तब हम शिवरूप हो गये। अपन सभी जीव रूप हैं, इसलिए शिव रूप बने हुए ईश्वर को हम श्रद्धा की दृष्टि से, उपास्य की दृष्टि से और भगवान की दृष्टि

मानव शीश झुकाते हैं। क्यों ? इनके शरीर पर तो बढ़िया वस्त्र नहीं है, कामती हीरे-मोती के आभूषण नहीं है, जिनके कारण से लोग इनकी ओर आकर्षित होते हैं। चार गज शुद्ध खादी के कपड़े में ये अपने शरीर को लपेटे हुए हैं। फिर भी सबके मस्तक इनके चरणों म झुकते हैं। किसलिए ? कारण स्पष्ट है, ये त्याग और तपस्या की सजीव मूर्तियां हैं। अपना यह भारत देश त्याग प्रधान देश है। *यहां त्यागी की उपासना, और भोगी की उपेक्षा होती है।*

यहा आपको बुनियादी शिक्षा दी जाती है। अगर आप इस शिक्षा के सिद्धान्तों को जीवन मे उतार लेंगी तो आप दूसरों को सफलता पूर्वक सिखा सकोगी। आप शिक्षिकाएँ नहीं, आप तो दीपिकाएँ हैं। दीपक का काम अंधकार का नाश करके प्रकाश देना है उसी प्रकार शिक्षिकाओं का कार्य अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना है। आप ज्योति हैं भविष्य में आपसे अनेक ज्योतिधर उत्पन्न होने वाले हैं। इन ज्योतियों में कहा कोई कमी न रह जावे, गुल न रह जावे, इनका प्रकाश कहीं क्षीण न हो जाय इसका पूरा ध्यान रक्खें।

बहिनो ! बच्चे बर्तन के समान है। बर्तन भले ही पीतल का हो, पर यदि हमने उसे साफ नहीं किया तो उस पर जंग चढ़ जायगा। इसी प्रकार बच्चों के जीवन को जितना आप सवा रेंगी उतने ही वे जीवन में चमकेंगे।

वसंत ऋतु में आम आते हैं। हर घर में आम-रस बनता है। सबसे पहले आम का रस निकाल दिया जाता है फिर छिलकों और गुठलियों को पानी में डालकर बचा हुआ रस भी निचोड़ लेते हो। तब छिलकों को फैंक देते हैं। हमारा यह शरीर भी आम्रफल है। इसमें भी रस भरा पड़ा है। कर्तव्य रूपी म, सेवा रूपी रस इस शरीर में जितना है उसे निचोड़ लो। ब जान लेते तो केवल चमड़ा मात्र ही रह जाय।

बहिनो! मैंने आपको दीपिकाएँ कहा है। आप अपने वन का स्व निर्माण करते हुए परोपकार की भावनाओं को ज्वलित करती हुई जिस घर की कुल-वधू, जिस स्कूल की त्रिका बना वहां प्रकाश ही प्रकाश फैला दो, स्वर्ग का निर्माण रो। जहां भी आप जाकर खड़ी हो जाओ वहां का अशांत तावरण शांत हो जावे, पारस्परिक कलह दूर हो जावे। यही री शुभ कामनाएँ हैं, यही मेरा आशीर्वाद है।

ॐ शांति शांति शांति

नियादी महिला प्रशिक्षण संस्था
रतलाम ११ ६ ६२

मोह--मदिरा

मदिरा एक जड़ वस्तु है, परन्तु उसके पीने से चेतन जड़वत् बन जाता है। उसी प्रकार हमारे महर्षियों ने ज्ञानी भगवतों मोह-कर्म को मदिरा का नाम दिया है। यह आत्मा अनादि काल से मोह मदिरा पीकर बेभान हो रहा है। इस आत्मा ने विषय विकारों की मदिरा पी है, मिथ्यात्व की मदिरा पी है। विषय विकार और मिथ्यात्व आदि मोह से ही उत्पन्न होते हैं, अतः ये इसके पुत्र के समान ही है।

बंधुओ! हम सब धर्म ध्यान किसलिये करते हैं? कर्मक्षय करने के लिये, जन्म मरण मिटाने के लिये, मोक्ष प्राप्त करने के लिये। वास्तव में साध्य तो बहुत बढ़िया है पर साधन का क्या

हुआ ! अगर कहते हैं कि जैन धर्म रूपी जहाज ले लिया है भव सागर से पार उतर जायेंगे। पर बन्धुओ ! इस जहाज में तो आपने छेद कर दिये हैं। आश्रव और कषायों के द्वार खोल दिये हैं। जहाज में छेद होने से वह डूब जाता है और यात्रियों को भी ले डूबता है। ऐसा जहाज कभी भी आपको किनारे पर नहीं पहुंचा सकेगा। जहां तक आश्रव और कषायों के द्वार खुले हैं, आप इस भव-सागर में डुबकियां लगाते रहेंगे और मोक्ष का किनारा दूर ही रह जायगा। हमने मोह रूपी मदिरा को पीकर प्रकाश के लिये लालटेन पकड़ने के स्थान पर पिंजड़ा उठा लिया है। अब प्रकाश मिले तो कैसे ? इस मदिरा के नशे को अपने को स्वयं ही उतारना है और सही राह पकड़ना है। परन्तु इसके लिये हमें हृदय में एक तड़फन, एक चाह पैदा करनी होगी। जहां चाह है, वहां राह है। हमें जिज्ञासु बनना होगा, मुमुक्षु बनना होगा, और आत्म कल्याण की हिलोरें अपने हृदय में पैदा करनी होगी। गहरे उतर कर सिद्धि प्राप्त करना होगा। कहा भी है—*'जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।'* अगर हमारे में चाह नहीं है मुक्ति प्राप्त करने की तड़पन नहीं है, अपनी आज की परिस्थिति के विरुद्ध मन में विद्रोह की भावना नहीं है तो हम राह खोजने का उपाय *क्यों* [illegible] हो करें, राह सामने होते हुए भी हमें *नहीं* [illegible] नहीं देगी।

दानवता और मानवता, कल्याण की राहें और अकल्याण
राहें, सदा स रही हैं। परन्तु हम अपने को सबल बनायें सु
बनावें, समर्थ बनावें, माह मदिरा पीना बद करके जो व
नशा है उस वीतराग वाणी रूपी औषधि से उतारें। ह
मानव देह प्राप्त करके वीतराग की शरण में जाकर भी अ
उद्धार नहीं किया, तो फिर कब करेंगे ? किसी कवि ने कहा

बहुपुण्य केरा पुज थी, शुभ देह मानव नो मल्यो
तो ये अरे भव चक्र नो, आँटो नहीं एके टल्यों
सुख प्राप्त करता सुख टले छे, लेश ए लचे ग्रहो।
क्षण-क्षण भयंकर भाव मरणे किम अहो राची रहो॥

अनत पुण्य पुज से प्राप्त इस नर देह न सब साध
सामग्री प्राप्त की, सब तरह से सफल हुए फिर भी इस भव च
का एक भी आँटा कम नहीं कर पाये। अनन्त भवों का भ्र
को मिटाने के लिये तो यह मनुष्य भव मिला, फिर भी य
आकर नई भूल और करते हैं। ज्ञानीजनों का हमारी इस द
नीय दशा पर बड़ा दद होता है बड़ा खेद होता है और अ
लोगों पर उन्हें बड़ी दया आती है। करुणामय ज्ञानी पुरुष ब
दया करके हम राह पर लाने का प्रय न करते हैं, अपन अनुभ
का हमें लाभ देते हैं। हमारी शारीरिक, बौद्धिक और पा
वारिक साधना भले ही कमजोर रह जावे पर आत्मिक साध
को कभी कमजोर मत बनाओ। क्षणिक भौतिक सुखों की च

न में फँसने वाले, अपने आत्मिक सुख से, जो कि शाश्वत सुख है, वंचित रह जाते हैं। इसीलिए कवि ने कहा है कि—
'सुख प्राप्त करता सुख टले छ।'

बंधुजनो! मरण दो प्रकार के होते हैं—द्रव्य मरण और भावमरण। आयुष्य समाप्त होने पर मर जाने को द्रव्य मरण कहते हैं। अठारह पाप स्थान का सेवन करना भाव मरण है। जब तक भाव मरण नहीं मिटेगा द्रव्य मरण भी नहीं मिट सकता है। राग द्वेष करना ईर्ष्या करना निंदा आलोचना करना किसी का अहित चिंतन करना, झूठ बोलना, चोरी करना आदि भाव मरण है। इस भाव मरण को समाप्त करना है। आजकल द्रव्य क्रियाओं में द्रव्य भाव ों में हमारा सारा शक्ति व्यय हो रही है, पर भाव भावना की ओर लक्ष्य कम हो गया है फलतः यह होता है कि हम मेहनत करते हैं पर मजदूरी खो देते हैं। कषाय विषय-वासना राग द्वेष, मोह ममता यह सब भाव मरण है। शरीर को, धन को, सम्प्रदाय को अपना समझना यह भी भाव मरण है। सम्प्रदाय धर्म ध्यान का साधन भी हैं और आर्तध्यान का साधन भी है। कहा भी है—'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' जिसकी धर्म ध्यान की दृष्टि है उसके लिए सम्प्रदाय धर्म ध्यान का साधन है परन्तु जहाँ दृष्टि भेद हो जाता है वहाँ सम्प्रदाय धर्म ध्यान के स्थान पर आर्तध्यान का साधन बन जाती है। आज स्थान स्थान पर मंदिर मंदिर में झगड़ा, स्थानक ... झगड़ा श्वेतांबर दिगंबर में झगड़ा

झगड़ा आखिर यह सब क्या हो रहा है ? इस भव मरण को मिटाने से ही जन्म मरण मिटेगा, अन्यथा नहीं मिटेगा।

याद रखिये ! हमारे यहां कहा है कि *'वत्थु सहावो धम्मो'* जो वस्तु का स्वभाव है वही वस्तु का धर्म कहा जाता है। आत्मा का धर्म कहलाता है। धर्म में कभी भिन्नता नहीं आवेगी। साधनों में भिन्नता सदा से ही रही है और रहेगी। कपड़ा वही रहेगा, पर डिजाइनों में फर्क हो सकता है। मकान बनाने के तरीकों में, उनके आकार में फर्क हो सकता है पर ईंट, चूना पत्थर तो वही रहेगा। धर्म कभी भेद को लेकर चलना नहीं है, धर्म में कभी भिन्नता होती नहीं है। धर्म तो नदी का पानी है। भाजन भेद को हमने धर्म भेद समझ लिया है और इसी कारण से भेद पैदा होता है। इससे तो जन्म मरण बढ़ता है, कल्याण नहीं होता है।

देखिये ! ये पंजाबी भाई नीमचौक स्थानक में दर्शन, व्याख्यान श्रवण के लिये पंजाब से आये हैं, सो यहां भी आये हैं। यदि अपन इस तरह से एक दूसरे के निकट आने लग जावेंगे तो संभव है ५-१० वर्ष में एक दूसरे के बहुत निकट आ जावेंगे। आपस में एक दूसरे की आलोचना करने की जो वृत्ति है, आपस में जो मनमुटाव होते हैं, उन्हें जड़ से उखाड़ सकेंगे। जब अपन एक दूसरे के नजदीक आवेंगे, श्रावक श्रावकों के संपर्क में आवेंगे तो आपस में प्रेम भाव बढ़ेगा एक दूसरे के लिये हृदय में स्थान होगा और मित्रता बढ़ेगी।

तीर्थंकर भगवत जब समवसरण में विराजते हैं तो *'नमो तित्थाय'* कह कर विराजते हैं, देशना सुनाते हैं, और चतुर्विध संघ में साधु साध्वी, श्रावक श्राविका चारों होते हैं। ऐसा लगता है मानों भगवान ने वीतराग शासन की रक्षा करने के लिए चार ट्रस्टी नियुक्त किये हैं। बंधुओ ! ट्रस्टी का अर्थ आप समझते हैं ! भगवान महावीर जो कार्य कर गये हैं, उसकी रक्षा करना उसमें वृद्धि करना ट्रस्टियों का काम है। परन्तु अगर उसमें घाटा आयगा तो फिर वे ट्रस्टी भ्रष्ट ट्रस्टी कहलावेंगे। धर्मों में, क्रियाओं में, गच्छों में, सम्प्रदायों में भिन्नता है तो रहने दो पर दिलों में भिन्नता क्यों रखते हो ? एक दूसरे के साथ भाई चारा रखने के स्थान पर द्वेष और दुश्मनी क्यों ? इनसे तो वीतराग शासन में कमजोरी आवेगी और अपने ट्रस्टियों के कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकेंगे। कहा भी है-*'नौ पूर्व भणियो तो भी मूल्यो रखडियो'* नव पूर्व का ज्ञान होने पर भी चौरासी में रगड़ रहा है। कारण क्या है ? भूल मूल में हुई है। हमने सम्यग दर्शन को नहीं समझा। जो सम्यग् दर्शी है वह सब आत्माओं को अपनी आत्मा के समान समझता है ज्ञान-दर्शन चारित्र का समझता है, सबके साथ प्रेम और मैत्री भाव रखता है तथा जड़ और चेतन का भेद समझता है।

बंधुओ ! हमारे हृदय में दुखियों के प्रति करुणा का भाव उत्पन्न होना चाहिये। अगर हमने दुखियो का दर्द नहीं मिटाया तो जीवन में किया ही क्या ? एक कवि ने ठीक ही कहा है कि—

न जाति प्रेम है जिसमें, महोब्बत है न भाई की।
वह मुर्दा कौम है जिसमें न बू है एकताई की॥

अतएव भाइयो! मुर्दा कौम मत बनो, जिंदा कौम बनो, और देश, समाज, राष्ट्र तथा धर्म की सेवा करो। एकता के सूत्र में बंध जाओ। फूट फजीते की बदबू दूर करो, और सकुचित सांप्रदायिक दृष्टिकोण को त्याग कर सब को भाइ भाई समझो। एक दूसरे से प्रेम करो, मैत्री भाव रक्खो। इसी से आत्म-विकास होगा, इसी से भव बंधन छूटेगा और मुक्ति के राजमार्ग पर अग्रसर हो सकोगे।

ॐ शांति शांति शांति

त्रिपोलिया
रतलाम १२ ६ ६३

ोने की थाली मे लोहे की मेख

आज यहां विराजे हुए खाचरौद के सयुक्त (मंदिर एवं थानक) श्री सघ को मैं बधाई देती हूं। आप लोगों ने अपने दयों की दूरी को हटा कर भाई भाई के बीच की दिवालों को ोड़ कर एक दूसरे के साथ मिलकर यहां जो आये हैं, इसलिये मैं स स्तुत्य कार्य की प्रशंसा करती हूँ। आपने अन्य ग्रामों के लेय, अन्य पर्वों के लिये एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। मैं तो आप सब को वीर भगवान क पुत्र के रूप में देखती हू और बधाती हूँ। आज कल यह कहना एक आम बात हो गई है कि हमारे तो अमुक गुरु की समकित है। परन्तु पहली समकित तो आपको वीतराग प्रभु की है, उस समकित का सबंध तो तोड़ ...नें गुरुओं की समकित लेकर

जैन समाज के लोग कितना दान करते हैं, कितनी तप श्चर्या करते हैं कितने व्रत करते हैं। फिर भी इस सोने की थाल में एक लोहे की मेख लग गई है। यह मेख है फूट की। खाचरौद श्री संघ ने फूट के कड़वे फलों को पहचान कर एकता को अप नाया है, यह प्रशंसनीय बात है।

बंधुजनो! तलवार म्यान में रहती है, कीमत किसकी ज्यादा है तलवार की या म्यान की। म्यान शरीर है और तल वार आत्मा है। जब तलवार नहीं होती है या टूट जाती है तब हम म्यान को फेंक देते हैं। जब आत्मा नहीं रहती तो शरीर जला दिया जाता है। मरने के बाद अपने शरीर को लोग *'राम नाम सत्त'* कहते हुए ले जाते हैं। पर मरने के बाद बोले हुए शब्द अपने काम आने वाले नहीं हैं। जीते जी अगर हम राम नाम लेंगे तभी वह काम आयेगा। कहा भी है-*'राम नाम साचो है और सब काचो है'।* इस वाक्य को हृदय में उतार लो। राम के मतवाले बन जाओ। कैसे? हनुमान जैसे। कहावत है कि *'जहां राम है वहां हनुमान है'।* हनुमानजी भगवान राम की छाया है। भक्त वही है जो भगवान का सेवक बनता है। भक्त के मन में तो भगवान सदा ही बसते हैं पर जो भक्त भगवान के हृदय में बसता है, ऐसे भक्त विरले ही मिलते हैं। हनुमानजी ऐसे ही विरले भक्त थे। भगवान महावीर ने पूणिया श्रावक को *'धर्मलाभ'* कहलाया, पर महाराजा श्रेणिक को *भूल गये। पूणिया* श्रावक गरीब था, कमाई इतनी थोड़ी थी कि पति पत्नी का पेट

मुश्किल से भरता था। अगर कभी कोई व्यक्ति महमान आ जाव तो दोनों को उपवास करना पड़ता। पर भगवान के प्रति उनकी अटूट निष्ठा था। वह भगवान महावीर के हृदय में बसा हुआ था। भगवान के हृदय में वही भक्त बसेगा जो गुणवान होगा गुरु के हृदय में वही शिष्य बसेगा जो गुणवान होगा, जनता के हृदय में वही व्यक्ति बसेगा जो गुणवान होगा। बड़े भारी पुण्योदय से लाखों में से कोइ सच्चा भक्त बनता है।

साधारणतया यह समझा जाता है कि भौतिक सामग्री, धन, सत्ता आदि पुण्योदय से मिलता है। पर जब मयणा-सुन्दरी से उसके पिता ने पूछा कि पुण्योदय का क्या फल होता है, तो मयणा सुन्दरी ने उत्तर दिया कि हे पिताजी! जिसके बड़े भाग होते हैं, जिसके महान पुण्यों का उदय होता है, वह शील वत, दयावन्त, विनयवान, विवेकवान, सद्धर्म गोष्ठी में रुचि रखने वाला एव प्रसन्न चित्त होता है।

मयणा सुन्दरी ने शील को प्रथम स्थान दिया है। जिनके किस्मत फूटे हो, वह असद् मार्ग में जाते हैं असद् प्रवृतियों का आचरण करते हैं। समझ लीजिये कि जहां सुशीलता है सदाचार है, और जिसने सद् आचार और विचार को अपने जीवन का आधार बना लिया है वह महाभाग्यशाली है। जिसका जीवन निष्कलंक है वह महापुण्यवान है। दान देने की प्रवृत्ति पुण्यवान में ही मिलती है। जो पुण्यवान है वही दान दे सकता है; फिर वह ... व्यक्ति हो या श्रीमत हो।

। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान ने विनय को धर्म का मूल कहा है। बधुजनो ! जीवन में अपने प्रत्येक कार्य में विवेक का सहारा लो। हर एक कार्य करने से पहले अपने विवेक से विचार करो कि यह कार्य उचित है या अनुचित। सत्सग, सद्‌धर्म गोष्ठी में रुचि होना भी पुण्योदय का लक्षण है। इन्सान को सुख या दुख में, मिलन या विरह म, धूप या छांह में हर परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य होना चाहिये। दुख में मुँह लटकाने से, चेहरा उतारने से, गमगीन होने से, नि श्वास डालनेसे क्या होना है? हमारे कर्मों का फल तो हमको ही भोगना पड़ता है, उसम कोई भी हिस्सा नहीं बटा सकता है। इसलिये बधुजनो ! सदा प्रसन्न रहो। हसमुख चेहरे को सभी पसद करते हैं।

बधुजनो ! अपने जीवन का समय प्रतिक्षण कम होता जा है। हमारे ये बाल, य केश जिन्हें हम रोज सवारते हैं जिनका रोज शृ गार करते हैं, हमें कितनी बड़ी शिक्षा द रहे हैं ? जैसे जैसे मनुष्य की उमर बढ़ता है बालो का कालापन कम होता जाता है और वे सफेद होत जाते हैं। *बालो का काले से धोला होना* अपने को शिक्षा दे रहे हैं, अपने को सचेत कर रहे हैं कि देखो हमने भी अपने अंदर का कालापन दूर कर दिया है, अब तुम भी अपने जीवन में जो कषायरूप कालापन है उसे दूर कर दो। विषय विकारों को निकालो, स्वार्थ को त्यागो, मोहको त्यागो कर्तव्य क मैदान में आगे आओ, सबसे मैत्री भाव रक्खो।

परन्तु आज मैत्री के स्थान पर जिधर देखो उधर प्रकृति-जन्य अशान्ति ज्यादा है। एक कवि ने कहा है —

इष्ट मिले आशा फले, मिले खान और पान।
एक प्रकृति ना मिले, सब उसकी खेंचातान॥

प्रकृति को स्वभाव कह सकते हैं और विचार भी कह सकते हैं। जहा स्वभाव नहीं मिल, विचार नहीं मिले, वहा अशान्ति की चिनगारियाँ छूटती रहती हैं। अत हमें अपने विचारों को पुष्ट करने के लिये स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्याय के द्वारा स्वय ही अपने ज्ञान की वृद्धि करना चाहिये। केवल साधु साध्वी सघ के भरोसे नहीं बैठा रहना चाहिये। कहा भी है-*'पर की सदा निराशा'* जो पराई आशा में रहता है उस निराश होना पडता है। स्वाध्याय की आदत आपको दिगबर भाइयों से मानली चाहिय। हम गहने पहनने म, अच्छे कपडे पहनने में देखा-देखी करते हैं परन्तु स्वाध्याय में, धर्म कार्य में प्रभु स्मरण में दान देने में देखा-देखी नहीं करते हैं।

जरा देखो तो सही, हमारे शास्त्र मदिरों भडारों के जैल खाना भोग रहे हैं। उन ग्रथों को क्यों सजा दे रहे हो? उन्हे दीमक खा जाती है, उनमें कीड़े पड़ जाते हैं उनमें मील आ जाती है, पाने सड जाते हैं, फिर भी हम उन्हें न तो पढ़ते हैं और न यतना-पूर्वक समाल कर रखते हैं।

महानुभावो! अपने मदिर में जाकर प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं कि *जाइ जिनबिम्बाइ ताई सव्वाइ वदामि'*-जहाँ

जितने भी बिंब है, उन सबको मेरा नमस्कार है क्योंकि *'जहां राम वहा अयोध्या'* है। परन्तु *अपन बोला कांई ने पाला कांई'* मदिर में पैसे ज्यादा होते हैं तो हम क्या करते हैं ? वहां के पत्थर हटाकर मकराणो का पत्थर लगा देते हैं, काच का काम करने में उस पैसे को खर्च कर देते हैं परन्तु अगर कोई आपके पास आकर कहे कि हमारे मदिर का जीर्णोद्वार करना है, आप हमारी मदद करें तो तुरन्त ही जवाब दे देते हैं कि मध बडा बलवत है अकेले मारी ठेकेदारी थोड़े ही है। व्यवहार में यह नीति होती है और प्रार्थना में हम कहते हैं कि *'जहां जितने भी जिन बिंब है उन सबको मेरा नमस्कार है'*। यह कैसी दुविधा है इस जन समाज में ?

बधुओ ! मंदिरों में पूजा की बात लो। एक तो पूजा में जाने की रुचि नहीं होता और जो जाते हैं वे भी ऐसा समय देखते हैं कि पखाल हो जावे तब जावें। कहीं जल्दी पहुँच गये तो पखाल करनी होगी अगलुछना करनी पड़ेगा। अरिहत देव के लिये हमारे पास समय कहां है ? पर उधर आप दिगबर भाइयों को देखो, सब काम अपने हाथों से करते हैं। पर अपन ने तो भगवान को नौकरों के सिपुर्द कर दिये हैं। विचार करिये, जिस प्रेम और भक्ति से आप पूजा कर सकते हैं, नौकर कैसे कर सकते हैं। वह तो बगार टालने की दृष्टि से काम करेगा, उसमे भाव और भक्ति कहां से आवेगा ? बच्चे को सगी मां भी दूध पिलाती है और धाय भी दूध पिलाती है पर दोनों में कितना अतर है ?

याद रखिये, भक्त तो भक्त ही रहेगा, उपासक उपासक ही रहेगा, सेवक सेवक ही रहेगा और नौकर नौकर ही रहेगा। पहले मातायें और बहिनें अपने हाथों से पीसती थीं, पानी लाती थीं और प्रेम से भोजन बनाकर परिवार को खिलाती थीं। पर आज तो *'नल का पानी और कल का आटा है।'* नतीजा यह हुआ है कि शरीर की कलें कमजोर हो गई और शक्ति घट गई। इसी प्रकार जब से हमने भगवान का पूजा नौकरों से करानी शुरू कर दी, भक्ति की तीव्रता भी कम हो गई है। हम भी आपकी दी रोटियां खाते हैं। कहा है कि *'जैसा खावे अन्न वैसा होय मन।'* आप में जितनी भाव भक्ति होगी, धर्म के प्रति श्रद्धा होगी उसका असर हमारे ऊपर भी होगा।

आज मैं समाज का ध्यान एक क्रूर रिवाज-मृत्यु भोज की तरफ खींचना चाहती हूं। समाज सुधार के लिये हमें कुरीतियों को दूर करना होगा। बतलाइये! एक नौजवान मर जाता है तो आपको खुशी होती है या रंज? रंज कहां होता है, आप तो लड्डू खाने में मस्त रहते हैं। यदि उसकी मृत्यु से आपके कलेजे में दर्द हुआ, आपकी आंखों में आंसू आवे तो फिर आपके गले के नीचे नुकता कैसे उतर सकता है? आपका दिल इन्सान का है या पत्थर का है? किसी दिल में होली जल रही है और आप दीवाली मना कर मिठाई खा रहे हैं। उधर विधवा रो रही है, बिलख रही है, बच्चे बापू कब आवेंगे कि रट लगा रहे हैं और आप पंगत लगाने में मस्त हो रहे हैं। आप धान खाते हैं या धूल? आप उस विधवा के आंसू पी रहे हैं, उन

अनाथ बच्चों की आह ले रहे हैं। जो कुछ भी थोड़ी सी रकम मरने वाला छोड़ गया, उसे आप चाट गये। अब उनकी फिकर बाद में कौन करेगा ? समाज की एक बेटी पर पहाड़ टूट पड़ा है, बच्चे छोटे हैं, क्या आपने उनके भविष्य के लिए भी कुछ विचार किया ? समाज तो मा-बाप हैं, सरंक्षक हैं, पर काम तो हम भक्षक जैसा करते हैं। (इस उपदेश को सुन कर भारी संख्या में उपस्थित स्त्री-पुरुषों ने मृत्यु भोज के सोगन्ध लिये।)

बन्धुजनो ! आपको धन्ना-शालिभद्रजी की कथा तो याद होगी। दोनों की तपस्या बराबर थी, त्याग बराबर था, ध्यान बराबर था। परन्तु जब परिवार वालों व माताजी ने आकर उनसे बात करने का प्रयत्न किया तो माँ की प्रेममयी वाणी की ओर से धन्नाजी तो विरक्त ही रहे सो मोक्ष पधारे पर शालिभद्रजी की दृढ़ता में कुछ कमी आ गई, उनका ध्यान जरा विचलित हो गया। उसका नतीजा क्या हुआ ? जानते हैं, आप ? एक भव बढ़ गया। तैंतीस सागरोपम का समय बढ़ गया। मोक्ष इतने काल के लिए दूर हो गया।

इसलिए भाइयो ! इस संसार की, अपने परिवार की, अपने शरीर की, सब की गुलामी तो हमने बहुत करली, पर अब हमें परमात्मा की भक्ति-गुलामी करना है, प्रभु की हाजरी भरना है। पैगम्बर महम्मद साहब के अनुयायी मुसलमान कहलाते हैं। मुसलमान का अर्थ होता है, खुदा का बन्दा, खुदा का गुलाम, ईश्वर का सेवक। गुलाम वह कहलाता है जिसकी अपनी कोई

इच्छा नहीं होती है। वह अपने मालिक की इच्छा के अनुसार ही सब कार्य करता है। ईश्वर की गुलामी का अर्थ होता है "भव-मुक्ति" और संसार की गुलामी का अर्थ होता है 'भव-बन्धन'।

बन्धुजनो! सन्तजन बतलाते हैं कि ये व्याधियां, ये सुख दुःख सभी हमारे कर्मों का फल है। वे इन कर्मों के क्षय का मार्ग बतलाते हैं और समझाते हैं कि—"*न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी*"। कर्मों के क्षय होते ही हम परमात्म-स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे। इसके लिए हमें पुरुषार्थ करना होगा। बिना पुरुषार्थ किये सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। कहा भी है—

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एव पुरुषकारेण विना दैवी न सिद्ध्यति ॥

जैसे केवल एक पहिये से रथ नहीं चल सकता, उसी तरह बिना पुरुषार्थ के भाग्य भी सिद्ध नहीं होता है।

महापुरुषों के, भगवान राम के, भगवान श्रीकृष्ण के, भगवान महावीर के कहे हुए मार्ग पर चलने से ही उद्धार होगा, नहीं तो भले ही राम राम जपो, या महावीर महावीर जपो, न तो आप महावीर बनने के, और न राम बनने के। इसलिये आत्म उन्नति में प्रमाद नहीं करना चाहिये, सतत प्रयत्न करते रहना चाहिये जिससे आप शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकें।

ॐ शांति शांति शांति

त्रिपोलिया रतलाम १७-६-६३

ज्ञान--दीप

मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि इस जागृति के युग में जैन बन्धु भी जागृत होने लगे हैं पर अभी आखें पूरी नहीं खुली है। मैं समाज के कर्णधारों से निवेदन करना चाहती हूँ कि वे पूर्णतया जागृत हो जावें और बिस्तर छोड़ दें। कहीं ऐसा नहीं हो जाय कि ये अधखुली आखें बन्द हो जाय और निद्रा अपना प्रभाव पुन जमा दे।

जागृत अवस्था में हम दैनिक चर्या के सब काम करते हैं पर जीवन के सबसे महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र जीवन निर्माण के कार्य को अछूता ही छोड़ देते हैं। भगवान महावीर ने, दुनिया के सभी धर्मों के संतों ने आत्मा के विकास को ही मूल्यवान वस्तु माना है। पर आज हमने इसे गौण मान लिया है।

बन्धुओ ! इसका कारण क्या है ? इसका कारण है ज्ञान का कमी विज्ञान की कमी, बोध की कमी । आत्म-कल्याण रूपी रथ के दो पहिये हैं-ज्ञान और क्रिया । कहा भी है-'ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष ।' ज्ञान का अर्थ है जानना और क्रिया का अर्थ है करना । हमने आज क्रिया रूपी रथ के पहिये को सुरक्षित रक्खा है। क्यों कि यह बाहरी वस्तु है और परंपरागत होने से हमने पकड़ रखा है । परन्तु रथ के ज्ञान रूपी दूसरे पहिये को हमने अखंड नहीं रक्खा है । ज्ञान प्राप्ति और तत्व जिज्ञासा की भावना हममें नहीं रही है । याद रखिये, एक पहिये से रथ नहीं चलता है और खंडित पहिये वाला रथ का रथी कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता या यूं कहें कि वह विजय पताका फहराने के लिये प्रस्थान भी नहीं कर सकता है ।

भाइयो ! हम उदासीन वृत्ति धारण करते हैं, तपश्चर्या करते हैं सामायिक पौषध करते हैं दान देते हैं तीर्थादि की यात्रायें करते हैं परन्तु इन सबके साथ इन क्रियाओं में छिपे हुए ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उसे समझने के लिये प्रयास नहीं करते, स्वाध्याय नहीं करते । हमारी दशा उस तोते के समान है जो बिना समझे राम राम की रट लगाता है । कहा भी है—

ज अन्नाणी कम्म खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं ।
त नाणी तिहि गुत्तो, खवेई उसासमेत्तेण ॥

अज्ञानी साधक करोड़ों वर्षों की कठोर तप साधना से

जितने कर्म नष्ट करता है ज्ञानी साधक मन, वचन और शरीर को वशी में करता हुआ उतने ही कर्म एक श्वास भर में क्षय कर डालता है।

बधुओ ! हमें स्वाध्याय की, बांचने की आदत डालना चाहिये। अब प्रश्न यह उठता है कि हम क्या पढ़ें और कैसे पढ़ें ? हम सामायिक और प्रतिक्रमण की पाटियां रट लेते हैं और उनका उपयोग सामायिक या प्रतिक्रमण करने में कर लेते हैं। परन्तु जैन दर्शन को समझने की इच्छा रखने वाले क्या पढ़ें ? हम प्रतिवर्ष लाखों रूपया खर्च करते हैं खान पान में खर्च करते हैं, दान देने में खर्च करते हैं पर मुझे बड़ा रंज है कि जैन दर्शन जैन साहित्य के निर्माण के लिये हम कुछ नहीं कर रहे हैं। कुछ पाठ्यक्रम निकले हैं,दिगंबर समाज के भी, पाथर्डी का भी मैंने देखा है, पूना का कार्स भी देखा है, पर उन सबमें थोड़ी थोड़ी कसर रह गई है। कमी किस चीज की है ? कमी है प्रेम की, संगठन की, सद्भाव की, समभाव की और हृदय की विशालता की। जहां दिल छोटे होते हैं, जहां सांप्रदायिकता होती है वहां क्या होता है ? वहां व्यवहार में छोटाई आ जाती है, सांप्रदायिकता झलकने लगती है। पर बंधुओ ! याद रखिये कुए के पानी को चाहे लोटे से भरो नल से भरो या घड़स से भरो पानी के रूप में कोई फर्क नहीं आवेगा। सभी भिन्न-भिन्न साधनों से निकलने वाला जल एक रूप, रंग और स्वाद का होगा। हमारे हृदय भी कुंए के समान हैं। भाषा, लेखन आदि साधन हैं। यदि हमारे

हृदय में विशालता है, प्रेम है, रस है तो हमारी वाणी, हमारी लेखनी और हमारी भाषा रसीली होगी। परन्तु अगर हृदय में कटुता है, संकीर्णता है, तिरस्कार का भाव है तो हमारी वाणी में, हमारी भाषा में हमारे व्यवहार में भी वही कटुता, संकीर्णता और तिरस्कार की भावना झलकेगी। पाठ्य-क्रमों पर भी उन भावनाओं का असर पड़ता है। देव, गुरु और धर्म की व्याख्या की जाती है। देव कौन? अठारह दोषों से रहित, कर्मक्षय करने वाले, केवल ज्ञान को प्राप्त करने वाले देव कहलाते हैं। गुरु कौन? बस इसी बात पर साम्प्रदायिकता समा पाठ्यक्रमों में झलकती है। एक लिखता है जिसके हाथ में मोर पींछा है कमण्डल है वही गुरु है, दूसरा लिखता है कि जिसके मुंह पर मुखपत्ति है वही गुरु है, तीसरा लिखता है कि जिसके हाथ में मुखपत्ति है, हाथ में दंडा है वही गुरु है। अब पढ़ने वाले किसको गुरु मानें? वह बचपन में जो सिखा दिया उसीको गुरु मानेंगे, दूसरों को नहीं। पर गुरु की कोई यह व्याख्या नहीं करता है कि जो ब्रह्मचारी हो संयमी हो, तपस्वी हो, त्यागी हो, समन्वय साधक हो विश्व प्रेम की भावना रखने वाला हो वीर संदेश सुनाने वाला हो और उन नियमों को जिनको कि हम सब मानते हों, पालने वाला हो, वह गुरु है।

बन्धुओ! याद रखिये हम अपने अपने घरों में कितने ही बढ़िया बाजे बजावें, बैंड मंगावें, नगारे बजावें पर जब तक संगठन का बिगुल नहीं बजावेंगे, प्रेम के भजन नहीं गावेंगे,

तिरस्कार मरे गीतों का गाना बन्द नहीं करेंगे तो हमारी सर्वांगीण उन्नति कभी नहीं हो सकती है। इसलिये यह आवश्यक है कि सभी सम्प्रदायों की प्रमुख संस्थाएँ मिल कर ऐसा साहित्य का निर्माण करें जिसमें जैन सिद्धान्तों का निरूपण हो, अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का विवेचन हो भगवान महावीर के स्याद्वाद का महत्ता पर प्रकाश डाला गया हो। ऐसा साहित्य जब पाठक पढ़ेगा तब वह जैन धर्म के मर्म को समझेगा और जीवन में उसको उतारने का प्रयत्न करेगा।

हम अपने आपको भगवान महावीर का अनुयायी कहते हैं, उनके पुत्र होने का दावा करते हैं पर भगवान महावीर का सच्चा पुत्र कहलाने का अधिकारी वही है जिसने सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र को पहचाना, जिसने निज के स्वरूप को समझा। हमारी स्थिति तो यह है कि हम चेतन को छोड़ कर जड़ के उपासक बन गये। धन सम्मान प्रतिष्ठा ने हमें अन्धा बना दिया है।

बन्धुओ! हम तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र के भण्डार हैं। हमारी तिजोरी पर आज ताले लग गये हैं, मोहराज की सील लगी हुई है, इसलिये हम उसका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। बस तिजोरी पर से मोहराज की सील को तोड़दो, तिजोरियों के ताले खोलदो तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र के हम भोक्ता बन जायेंगे। भौतिक उन्नति एकांगी उन्नति है, उसमें आध्यात्मिक उन्नति का पुट देंगे तो मिठास आ जायगी।

भाइयो ! अनेकान्तवाद के स्वरूप को समझो, उसके व्यवहारिक महत्व को समझो। यह दुनिया के सारे झगड़े "ही" और "भी" के हैं। 'भी' के स्थान पर 'ही' आ जाने से झगड़े होते हैं। ऐसा हो भी सकता है व स्थान पर ऐसा भी हो सकता है। अनेकान्तवाद के इस सिद्धान्त को सभी विद्वान मानने लगे हैं। जिनवाणी तो इसे "भी-सिद्धान्त" कहते हैं। जब से हमने इसका आचरण छोड़ा है, अपने में गच्छ भेद पंथ भेद, धर्म भेद आदि घर कर गये हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि अपने जीवन में निंदा आई, आलोचना आई और इन प्रवृत्तियों के कारण अहिंसा के स्थान पर हिंसा का प्रवेश हो गया। याद रखिये हिंसा और धर्म का एक स्थान पर एक समय में निर्वाह नहीं हो सकता है।

हिंसा दो प्रकार की होती है, स्वहिंसा और परहिंसा। परहिंसा का अर्थ है दूसरों की हिंसा और स्वहिंसा का अर्थ है अपने स्वयं की हिंसा करना। हमारे जीवन में क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषाय हमारी आत्मा का हनन कर रहे हैं। हम अपने परिवार के लिए, मित्रों के लिए क्या-क्या नहीं करते हैं? पर उनके लिए किये गये कर्मों का फल भी हमें ही भुगतना पड़ता है, वे हिस्सा नहीं बटा सकते हैं। कहा भी है—

यथा काष्ठ च काष्ठ च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयाता तद्वद्भूत समागमः॥

जैसे लकड़ी के दो टुकड़े समुद्र में बहते हुए आकर मिलते हैं और लहरों की ठोकर खाकर फिर अलग हो जाते हैं। ठीक इसी तरह संसार में प्राणियों का साथ है।

बन्धुओ! हमारे बाहरी जीवन में तो प्रतिदिन कुछ न कुछ होता ही रहता है और हम उसे किसी प्रकार निपटा लेते हैं। परन्तु हमारे अन्तर में जो मिथ्यात्व का अन्धेरा हो रहा है, और जिसके कारण हम इस भव-चक्र में फंसते ही जा रहे हैं, उससे भी हमें छुटकारा पाना है। अधकार को मिटा कर प्रकाश में जाना है। नीतिकार ने कहा है —

सत्याधारस्तपस्तैलं दमो वर्तिः क्षमा शिखा।
अंधकारे प्रवेष्टव्य, दीपो यत्नेन धार्यताम् ॥

संसार रूपी अन्धकार में प्रवेश करते समय सत्य रूपी ऐसे दीपक को यत्न पूर्वक लो, जिसमें तप रूपी तैल हो, दम रूपी बत्ती हो और क्षमा रूपी जिसकी शिखा हो। ऐसे दीपक को पास में रखने से अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होगा और आप लोग निज स्वरूप को समझने लगेंगे।

आज कल व्यवहारिक पढ़ाई तो खूब हो रही है, पर धार्मिक अध्ययन की ओर रुचि कम प्रतीत होती है। सदाचार और नैतिकता के पाठ हमारे बच्चों को न तो घर में सिखाये जाते हैं और न स्कूलों में इसका नतीजा यह हो रहा है कि

मारा नई पीढ़ी म धार्मिकता और नैतिकता का अभाव दृष्टि-
ोचर हो रहा है और उदारता के स्थान पर संकीर्णता, द्वेष के
स्थान पर द्वेष फैल रहा है। आज कल की साम्प्रदायिक खींचा-
तानी को देख कर मेरी आत्मा को बड़ा दुख होता है। जहां
चारों ओर सुगन्ध ही सुगन्ध होना था वहां आज धर्म के नाम
पर, संप्रदाय के नाम पर दुर्गंध ही दुर्गंध फैल रही है। इस फूट-
फजीत में हमारी शक्ति का ह्रास हो रहा है। आलीशान भवन
की दीवालों में अगर दरारें पड़ जाती हैं तो तुरन्त ही हम उसमें
सीमेंट लगा कर ठीक कर देते हैं नहीं तो सारी इमारत के
धराशायी होने का डर रहता है। इसी प्रकार हमारे इस धर्मरूपी
भवन की दीवारों में सम्प्रदाय रूपी दरारें पड़ गई हैं, अगर इन्हें
समय रहते नहीं संभाला तो भवन की नींव ही कमजोर पड़
जायगी। आज के बच्चे तो धार्मिक पढ़ाई से कतराने लग गये
हैं। इसलिये समाज के कर्णधारो ! आप सबको मिलजुल कर
धार्मिक अध्ययन के लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

इस राजेन्द्र जैन पाठशाला ने जो धार्मिक पढ़ाई का कार्य
शुरु किया है उसके लिये मैं शुभ आशीर्वाद देती हूं। संस्था के
संचालक यहां बच्चों को जैन तत्वज्ञान पढ़ावें ऐसी मेरी इच्छा
है। तत्वार्थ सूत्र ही चालू कर दें। यहां बच्चों में सुसंस्कार डालने
का यह नया मार्ग आप अवश्य ही निकालें। मैं भी गुरुदेव से
प्रार्थना करती हूं कि राजेन्द्र जैन पाठशाला की दिनों दिन उन्नति
हो। यहां जितने भी भाई बहन उपस्थित हैं उनसे भी मेरा यह

निवेदन है कि ये अधिक से अधिक सख्या में बालक बालिकाओं को धार्मिक पाठशाला में भेजने का पूरा ध्यान रक्खें।

आज यहां क त्रिस्तुतिक सघ की ओर से नाथू खां साहब ने स्वर्गीय आचार्य प्रवर राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहब द्वारा रचित अभिधान राजेन्द्र कोष के सातों भाग 'सुख सागर सुवर्ण भंडार बीकानेर' को भेंट किये हैं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। जिस भावना से प्रेरित होकर यह भेंट आपने दी है, उसको पूरी करने का हमारा सदैव प्रयत्न रहेगा। स्वर्गीय आचार्य प्रवर ने इस कोष की रचना कर जहां अपने अगाध ज्ञान का परिचय दिया है वहां उन्होंने सारे ससार की धर्म प्रेमी जनता पर भी अपार उपकार किया है। इस कोष की महिमा न केवल हमारे देश म है बल्कि जापान, जर्मनी, इंगलंड, अमेरिका आदि देशों के विद्वानों ने भी इसकी भूरि भूरि प्रशसा की है। अपने विषय का यह एक अनूठा ग्रन्थ है।

महानुभावो! आप सबसे मेरा पुन नम्र निवेदन है कि अपने पारस्परिक वातावरण बिगाड़ने वाली प्रवृत्तियों को समाप्त कर दें। यह रतलाम तो रत्नपुरी है, यहां के श्री सघ में जो संगठन की भावना है, उसका धन्यवाद तो मैं पहले भी कई बार दे चुकी हूं, आज भी दे रही हूँ। यहां के श्वेताम्बर, दिगंबर स्थानकवासी सभी भाइ साथ मिलकर एक दूसरे के जलसों में आते हैं, सभाओं में जाते हैं। आपका पारस्परिक सहयोग अनुकरणीय है। भारत में इस रत्नपुरी के श्री सघ के मस्तक पर

कमर और कुम का तिलक लगा हुआ है, सो वह कभी मिटने वाला नहीं है। आपकी यह एकता दिनों दिन बढ़ती जावे, आपस का जो थोड़ी बहुत बची हुई दीवालें हैं उन्हें भी [illegible] दें और वार प्रभु के सच्चे पुत्र बन कर अपना और [illegible] कल्याण सदैव करते रहें।

त्रिस्तुतिक उपाश्रय के भवन का भी आप [illegible] याग करें। कम से कम प्रतिदिन एक घंटे का स्वाध्या[illegible] र चालू करें जिससे यहां जो ग्रंथ अलमारियों [illegible] पड़े हैं उन्हें भी कैदखाने से निकाल कर [illegible] का मिले। कहा भी है—

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्[illegible]।
स्वाध्याय-योग-सम्पत्या परम[illegible]॥

स्वाध्याय से ध्यान और ध्यान से [illegible] होती है। जो साधक स्वाध्याय पूर्[illegible] अभ्यास करता है उसके सामने प[illegible]।

त्रिस्तुतिक उपाश्रय
रतलाम २१-९-६३

आध्यात्मिक साधना

आज आध्यात्मिक सम्मेलन के इस आयोजन में आकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि जीवन विकास के लक्ष्य को लेकर आपने इस संस्था का निर्माण किया है। अध्यात्मवाद का सम्मान के लिये समय समय पर जो भाषणों एवं प्रवचनों का कार्यक्रम रखते हैं उसके लिये कार्य कर्ताओं का प्रयास सराहनीय है। साधना का क्या अर्थ है? अपने को इन्द्रियों के, विषयों के, पाशविकवृत्तियों के आधीन करके सांसारिक सुख साधन उपलब्ध करना भौतिक साधना का मार्ग है और इन सब पर विजय प्राप्त करके स्वाधीन होना, आत्म-स्वभाव को पहचानना आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य है। हम आध्यात्मिक साधना जंगल में, गुफा में बैठकर भी कर सकते हैं और समाज

में रह कर समाज राष्ट्र की सेवा में कार्यरत रहते हुए भी साधना कर सकते हैं। जन हो या जगल आत्म लक्ष्य के लिये दोनों स्थितियों में साधक के लिए कोई फर्क नहीं पड़ता है।

जो आत्म साधना करना चाहता है उसके सामने 'मैं कौन हूं मेरी क्या शक्ति है, मुझे किन वृत्तियों का धारण करना चाहिये मेरी दैनिक-चर्या कैसी होनी चाहिये' आदि अनेक प्रश्न रहते हैं। मानव मस्तिष्क ही एक ऐसा मस्तिष्क है जिसमें ज्ञान ततुओं का पूर्णरूप से विकास हो सकता है। अन्य प्राणियों में भी आत्मा है पर उनमें बौद्धिक शक्ति, विवेक शक्ति, विचार शक्ति कर्तव्य शक्ति मौन रूप में रहती है और मानव में ये अभिव्यक्त होती हैं और उनका पूर्ण विकास हो सकता है। जितने दृश्यमान पदार्थ हैं वे सब अणुपुज है और इनमें जो शक्ति है उस भी विकास में लाने का कार्य आत्मा का ही है। आत्मा और अणु जड़ और चेतन इन दोनों से यह संसार बना है। इन दोनों का सदा अस्तित्व था और सदा बना रहेगा। आत्मा का त्रिकाल में अस्तित्व है। जो अपने मूल स्वभाव में सदा स्थित रहती है वही आत्म शक्ति है। सुवर्ण के अनेक प्रकार के आभूषण बनते हैं, पर सुवर्णपना नहीं जाता। द्रव्यरूप से आत्मा सदा रहती है पर उसके पर्याय-(पशु, मानव, देव आदि योनियां) पलटते रहते हैं। हमारी अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है पर आत्मा अपने स्वभाव में स्थिर रहती है।

संतों की वाणी हम सुनते हैं पर जहां तक उनकी वाणी

को हम स्पर्श नहीं करेंगे अपने जीवन में नहीं उतारेंगे वहां तक हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते हैं। हम केवल श्रोता बन कर ही रह जाते हैं। किसान बीज से फल उत्पन्न करने के पहले जमीन शुद्ध करता है, फिर उसको मुलायम बनाता है और बाद में जमीन में बीज डालता है। परन्तु बीज कितना ही बढ़िया क्यों न हो, अगर उसमें जल नहीं डालेंगे तो फल फूल कभी अंकुरित नहीं होंगे। भूमि और जल के मिलने से बीज की शक्ति अंकुरित होती है। फिर उसका क्रमिक विकास होता है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन और चारित्र के बीज हैं उन्हें अंकुरित करना पुष्पित करना, फलित करना, सद् विचाररूपी जल सत वाणी रूपी नीर पर निर्भर है। आत्मा में आने वाली विकृतियों को नष्ट करने को उनकी जड़ काटना को साधना कहते हैं। हमें विषयों, विकारों, इच्छाओं, लिप्साओं और स्वार्थों की जड़ें काटनी चाहिये क्योंकि ये आत्मा पर आक्रामक हैं। जबतक हम इन पर विजय प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक हिमालय के पहाड़ों में बैठने से भी कुछ नहीं होगा। जो इनको जीत लेगा वही सच्चा साधक कहलायगा। यही बात संसार के सभी संतों ने चाहे वे जैन हो या वैष्णव या अन्य किसी धर्म के हों, कही है।

बंधुओ! हमारा आयुष्य सीमित है। इसलिये हमें आलस्य को त्याग कर आत्म साधन में लगना चाहिये। कहा भी है—आलस्य हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपु -मनुष्य के शरीर में पड़ा हुआ सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है। जल में हिलते हुए

चंद्र बिंब के समान मनुष्य का जीवन चंचल है ऐसा समझ कर सब को चाहिए कि वे सदा सब का और अपने स्वयं का कल्याण करने में प्रयत्नशील रहें। धर्म कार्य में तो कभी प्रमाद करना ही नहीं चाहिए। नीतिकार ने कहा है कि '*गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत* अर्थात् सदैव काल के हाथ में अपनी चुटिया समझ कर धर्म कार्य को शीघ्र कर डालना चाहिए।

अगर किसी ने अपने को कटु शब्द कहा और अपन ने उसकी ओर प्रेम की नजर से देख लिया तो समझना कि अपनी विजय हुई है अगर वहीं आग बरसाने लगे तो समझना कि यह हमारी पराजय है। कहा भी है–

जो तोकू काँटे बुवे, ताहि बोउ तू फूल।
तोकू फूल के फूल हैं, वाकू है तिरशूल ॥

एक दिन की बात है कि गुरु द्रोणाचार्य ने पाठ पढ़ाया "*क्रोध मा कुरु, क्षमां कुरु*" क्रोध मत करो, क्षमा करो। पाठ के शब्द थोड़े ही थे, सब राजकुमारों ने सुना दिया, पर युधिष्ठिर ने सारा दिन पूरा होने पर भी पाठ नहीं सुनाया। गुरु द्रोणाचार्य बड़े कुपित हुए, उन्होंने युधिष्ठिर की ताड़ना की, भर्त्सना की और चपत भी लगाये। तब युधिष्ठिर ने बड़ी शांत मुद्रा से कहा कि—"गुरुदेव! अब मुझे पाठ याद हो गया है।" गुरु द्रोणाचार्य बोले—"युधिष्ठिर सारे दिन में तो तुझे पाठ याद नहीं हुआ था, अब मार खाते ही कैसे याद हो गया।" कहा भी है कि—

"छड़ी पड़े छमछम, विद्या आवे घमघम ।" युधिष्ठिर ने बड़े विनयपूर्वक कहा कि—"हां गुरुदेव ! आपने पाठ दिया था कि क्रोध मत करो । अब ऐसा प्रसग आने पर भी मैंने क्रोध नहीं किया । इसलिए मैंने कहा कि मुझे पाठ याद हो गया है । मैंने आपके दिये हुए पाठ की गाठ बांध ली है ।" द्रोणाचार्य बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि—"बेटा ! तू मेरे नाम को अवश्य चमकावेगा ।"

हमें भी चाहिये कि हम आत्म निरीक्षक बनें अपने दोषों को निकालने का प्रयत्न करें । यह नर देह देवताओं को भी दुर्लभ है । हमारे पास जो भी साधन सपत्ति है उसका उपयोग अगर हमने किसी दूसरे के दु ख को दूर करने में नहीं किया, किसी भूखे की भूख मिटाने में नही किया और वह किसी जरूरतमन्द के काम नहीं आई तो वह कौड़ियों के बराबर है ।

हमने उच्च शिक्षा प्राप्त की परन्तु हमारे जीवन का विकास नहीं हुआ, सेवा भाव जागृत नहीं हुआ स्वार्थ वृत्ति पर हमने विजय नहा पाइ तो उस शिक्षा का क्या मूल्य है ? नव पूर्वो का ज्ञान हो गया फिर भी रखड़ रहा है क्योंकि पढ़ तो लिया पर उसे जीवन में नहीं उतारा । सच्चा ज्ञान वही है जो मुक्ति दिलावे *'सा विद्या या विमुक्तये ।'*

कहा है-*'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि ।'* जो स्वयं दुर्गुणी होता है उसे मानवता म दानवता और सदाचार में दुराचार

नजर आता है। लेकिन जो सद्गुणी हैं उन्हें पापियों में भी परमेश्वर के दर्शन होते हैं। गुरु द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा कि जाओ किसी सद्गुणी को ले आओ। सारे नगर में घूमने पर भी दुर्योधन को एक भी सद्गुणी नहीं मिला सब में कुछ न कुछ दुर्गुण नजर आया। वापस आकर उसने कहा कि गुरुदेव नगर तो दुर्जनों से भरा पड़ा है, मुझे तो एक भी सद्गुणी नजर नहीं आया। तब गुरु द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर से कहा कि जाओ किसी सद्गुणी को लेकर आओ। युधिष्ठिर नगर भ्रमण कर आया उसे सभी सद्गुणी नजर आये। गुरुदेव से कहा कि मुझे तो नगर में सभी सद्गुणी प्रतीत हुए आप कहें उस ले आऊं। कहने का तात्पर्य यह है कि अगर हमारी दृष्टि ठीक है तो हमें सभी ठीक नजर आयेंगे और अगर हमारी दृष्टि कुटिल है तो संसार में चारों तरफ कुटिलता ही नजर आयेगी।

जिन्होंने अपनी दृष्टि को पलटा, सेवा भाव अपनाया ईश्वर निष्ठ बने वे संत बन गये। संतों की आंखों में कभी आप तिरस्कार, द्वेष और तुच्छता का भाव नहीं देखेंगे। वहां तो सदा प्रेम और करुणा की धारा बहती है। आप सब संत बन सकते हैं, परमेश्वर बन सकते हैं। परमेश्वर कौन? जिसने अध्यात्म में पूर्णता प्राप्त करली वह परमेश्वर बन गया। उपासक ही उपास्य बनता है। नारायण के नजदीक नर है। अब नारायण की शक्तियां हममें आनी चाहिये। जिन विरोधी शक्तियों से नारायण ने संघर्ष किया, उन्हीं विरोधी शक्तियों से हमें संघर्ष करना

है। जिस प्रकार बिल्ली चूहे पर आक्रमण करती है उसी प्रकार स्वार्थ वृत्तियां हमारी सेवा वृत्तियों पर आक्रमण करती हैं। हमें इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करना है। यह मत भूलिये कि हम में भी राम की, महावीर की, कृष्ण की, ऋषभदेव की, बुद्ध की, सती सीता और द्रौपदी की, चन्दनबाला और मयणा सुन्दरी की शक्ति विद्यमान है। इसी शक्ति को हमें जागृत करना है और अपने लक्ष्य तक पहुँचना है।

बन्धुओ! देव दुर्लभ मानव देह तो हम प्राप्त कर चुके हैं, अब तो केवल मानव पना प्राप्त करना रह गया है। आप तो जानते हैं पना कब बनता है? खरबूजे का पना, अरंड ककड़ी का पना, किसी भी फल का पना कब बनता है? जब आप उसमें शक्कर डाल देते हो। इसी प्रकार मानव में मानव पना लाने के लिये आपको आत्म-साधना, राष्ट्र साधना समाज साधना की शक्कर को जीवन में घोलना होगा। सच्चा साधक, सच्चा सेवक, सच्चा धर्म प्रेमी और सच्चा अध्यात्म मार्ग का राही तो प्राणी मात्र का प्रेमी तथा हित चिंतक होता है। महा पुरुषों में सारे विश्व के साथ आत्मीयता, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पाई जाती है।

संत भक्त कवि तुकोजी बड़े प्रेमालु स्वभाव, निर्दोष दृष्टि निर्दोष हृदय और निर्दोष जीवन वाले व्यक्ति थे। उनके मन में तथा उनकी आँखों में कभी रोष नहीं झलकता था। वे जिधर निकल जाते उधर ही उनकी आँखों से, वाणी से प्रेम बरसता

था। याद इसलिये अगर हमारे हृदय में सबके लिये सद्भाव है तो सबको सद्भावना हमारे लिये भी अवश्य होगा। द्वेष का शमन प्रेम से और आग का शमन पानी से होता है। भक्तजी के दयालु सरल स्वभाव ने उनके निष्कपट व्यवहार ने और स्नेह पूर्ण बर्ताव ने सबका हृदय जीत लिया था।

एक दिन की बात है कि संत तुकोजी ने बाजार से कुछ गन्ने खरीदे और वे घर की ओर चले। रास्ते में उनको बच्चों ने घेर लिया। सब बच्चों को गन्ना बांटते हुए जब वे घर पहुंचे तो उनके पास केवल एक गन्ना बच गया था। उनकी स्त्री यह सब देख रही थी। भक्त कविजी ने घर आकर बचा हुआ एक गन्ना गृहिणी को दिया। गृहिणी तो क्रोध से भरी पड़ी थी, उसने विवेक खोकर वही गन्ना संतजी के कंधे पर जोर से दे मारा और लगी जली-कटी सुनाने। सन्त तुकोजी ने बड़े मीठे स्वर में कहा कि प्रिये! इस निमित्त से गन्ने के दो टुकड़े हो गये, हम दोनों के खाने के लिये। उठाओ गन्ने को और उसका रस चूसो। तुम भी खाओ और मैं भी खाऊं। गृहिणी के सिर पर मानो घड़ों पानी गिर गया। सोचने लगी मैंने तो क्रोध के वशीभूत होकर इन्हें गालियां दी भला बुरा कहा यहां तक कि हाथ भी उठा दिया फिर भी ये मेरे साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार कर रहे हैं, जरा सा उलाहना भी मुझे नहीं दिया। वह स्वयं ही लज्जित हो गई और बार बार क्षमा मांगने लगी।

भक्त तुकोजी ने आग में सूखी लकड़ी नहीं डाली, उन्होंने

प्रेम-जल से उसे शांत कर दिया। हमें भी अपने जीवन में द्वेष पर प्रेम से, स्वार्थ पर परमार्थ से विजय प्राप्त करना है। बन्धुजनो! हमें भी अपने जीवन का निर्माण करना है। जब अपन अपने जीवन का विकास कर लेंगे, तब देश का, समाज का, और प्राणीमात्र का हित अपन विवेक से, उत्साह से और तन्मयता से कर सकेंगे। दूसरी दृष्टि से भी देख तो जैसी अपनी आत्मा है वैसी ही सबकी आत्मा है। जब अपन अपने हित की बात सोचेंगे तो स्वाभाविक है कि अपन ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे दूसरे किसी की आत्मा को कष्ट मिले या उसका अहित हो। गीता में कहा है—

> आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
> सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

हे अर्जुन! जो व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को अपने जैसा समझ कर समान दृष्टि से देखता है वह सुख में हो या दुख में हो, वह पूर्ण योगी समझा जाता है।

बन्धुओ! भाग्यशाली वे हैं जिन्हें सुख, साधन संपत्ति और शक्ति मिली है और जिसे वे परोपकार में लगाते हैं। वे महा अभागे हैं, महादरिद्री हैं जो इनको बाँट कर नहीं खाते। कहावत है कि "बाँट कर खाओ और बैकुण्ठ में जाओ"। भाईयों आप जीओ और दूसरों को जिलाओ, आप खाओ और दूसरों को खिलाओ, आप पढ़ो और दूसरों को पढ़ाओ, और आप

कमाओ और दूसरों का भी कमाई कराओ। लेकिन यह तभी संभव है जब हमारे दिल में सभी के लिये स्थान होगा।

संतों के जीवन से हम सबक लें। संत अपने ज्ञान को बांटते हैं अपने अनुभवों को बांटते हैं और अपने अंतिम श्वास तक जनता की सेवा करते हैं। महापुरुषों के संसर्ग में आने से उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलने से ही अपनी आत्मिक उन्नति संभव है। संत तो रोग की दवा बतलाने वाले हैं पर दवा को खाने और परहेज रखने का काम तो अपना है। संतों की वाणी और उनके उपदेश अपने लिये राम बाण औषधि का काम करते हैं पर उस औषधि को खाकर हजम तो अपने को करना है। ध्यान रखिये! गहनों की तिजारियों में बंद रखने से शरीर का शृंगार नहीं होता है। शृंगार के लिये तो उन्हें धारण करना होगा। पुस्तकों में लिखे महावाक्यों को पढ़ने मात्र से ही हमारा उद्धार नहीं होगा। उन वचनों को तो आत्मसात् करना है। मेरे पास तो संतों की वाणी रूप प्याऊ है। गिलास भर भर कर पीना और पिलाना मेरा काम है। उस पीकर अपने सब अपना जीवन सुधारें, अध्यात्म को अपनावें और मुक्ति के राज मार्ग पर बढ़ते चलें। यही मेरी शुभ कामना है।

ॐ शांति शांति शांति

माणकचौक रतलाम १७-६-६३

धर्मों की एकरूपता

आज मुझे अत्यत प्रसन्नता हो रही है कि स्वर्गीय महा मंडलेश्वर स्वामी सर्वानंदजी महाराज सा के सुशिष्य मंडलेश्वर रमेशमुनिजी से सत्संग करने का अवसर प्राप्त हुआ है। पंडित प्रवर सत महोदय को अभी आपने सुना है। ऐसे अवसर कम ही मिला करते हैं जब आपसी दूरी को खतम करके अपन एक दूसरे के निकट आते हैं, नजदीक आते हैं। प्रकृति ने तो अपन सब को मानवाकार में एक ही स्नेह नदी का पानी पीने वाला बनाया है, पर हम लोग अपनी सकुचित दृष्टि के द्वारा एक दूसरे से नाम भेद से हृदय भेद करते हैं। अभी अभी आपने संत प्रवर से इस विषय में गहरा प्रवचन सुना है कि मार्ग अनेक हैं पर साध्य एक है। अनेक मार्गों का होना बुरा नहीं होता पर हृदय

में अनेक्ता कर लेना ही बुरा है। अभी आपने सुना है कि नल ज्यादा होने से पानी भरने में सुविधा होता है, पर नलों की जुदाई से पानी में जुदाई समझ लेने से आपस में दीवालें खड़ी हो जाती हैं।

महानुभावो ! भिन्न भिन्न क्रियायें, स्मरण, जप, साधना आदि करते हुए भी यदि लक्ष्य बिन्दु एक है यह समझ लिया जाय शिव और जीव के भेद को समझ लिया जाय और यदि वह जाव अपने और ईश्वर के बीच पड़ी हुई दीवाल को तोड़ना शुरू करदे और अंत में पूरी तोड़ दे तो अवश्य ही जीव शिव रूप बन जाता है। अभी अभी आपने सुना है कि जब तक हृदय में माया है, भ्रांति है, अज्ञान है और भौतिकता को आत्म-स्वरूप समझ रक्खा है, तब तक संसार है माया है और अपन शिव से दूर है, हरि से दूर हैं, जिन से दूर है, वीर से दूर है यानी ईश्वर रूप से दूर है।

बन्धुओ ! अभी आपने ज्ञान और गुरु शब्द का काफी विवेचन सुना है। ज्ञान का कितना सुन्दर विश्लेषण किया है। जो विश्लेषण करे वह ज्ञान। पर विश्लेषण किसका ? जातियों का, वर्णों का, देशों का या खाद्य पदार्थों का ? नहीं नहीं क्या सुना है आपने, आत्मा और अणु का, जड़ और चेतन का विश्लेषण कर वह ज्ञान है।

संसार मिथ्या है पर अनादि है। मिथ्या में ही सत्य छिपा

हुआ है। इस मिथ्या और सत्य का जब तक जोड़ा है तब तक यह संसार गिना जाता है वह माया जीव कहा जाता है और जब वह मिथ्या के संसग से स्वय को अलग कर लेता है तो वह जीव अपने को ब्रह्म रूप बना लेता है। यही निश्रेयस है। धर्म वही है जो निश्रेयस की स्थिति में पहुँचावें, निश्रेयस स्थान पर पहुँचावें, फिर भले ही उस धर्म का कोई भी लेबिल हो। जो मुक्त बनाता है, विषयों से रहित करता हो, कषायों से रहित करता है। मायावी प्रवृत्तियों से रहित करता हो, वह धर्म है। इन्द्रियों की गुलामी जिसने खत्म कराई, भौतिकता की गुलामी से जिसने छुटकारा दिलाया, माया के जालों को तोड़ने की जिसने ताकत दी परिवार में रहते हुए भी 'एकोऽहं, ब्रह्मोऽहं, शुद्धोऽहं निरंजनोऽहं'–इस पाठ को जिसने पढ़ाया वही ज्ञान है।

अभी संत प्रवर ने कहा है कि ग्रंथि का भेदन करना, ज्ञान का काम है। गांठ किसकी है, किस गांठ ने हमें जकड़ और पकड़ रक्खा है? जैन वैष्णव सभी मोक्ष जाना चाहते हैं पर मोक्ष मिलता क्यों नहीं है? कारण साफ है, हम शब्दों में चाहते हैं, बातों में चाहते हैं। यदि हृदय में सच्ची चाह पैदा हो तो जगत के इन खिलौनों के खेलों में बच्चों की तरह मग्न क्यों रहते, दीवाने क्यों बनते? यह संसार परिवर्तनशील है। पर्याय और आकृति की दृष्टि से अशाश्वत है, जैसे अभी आपने सुना मिट्टी एक है पर उससे अनेक चीजें बनती हैं, अनेक आकृतियां बनती हैं और नष्ट होती हैं। सोना एक है पर

पर्याय रूप अनेक प्रकार के आभूषण बनते हैं। हमारे भी कई प्रकार के शरीरों का निर्माण होता है जैसे कभी मनुष्य रूप में कभी तिर्यंच रूप में, कभी पशु रूप में, कभी पक्षी रूप में। परन्तु इन अशाश्वत परिवर्तनशील पर्यायों में जो शाश्वत नित्य आत्मा है, वह आत्मा ही रहता है। जो नित्य है, सत्य है उसका कभी विनाश नहीं होता और जिसका विनाश होता है वह नित्य नहीं है, सत्य नहीं है। सूर्य सूर्य रहेगा। बादल उसे ढँक देते हैं। इस कारण से उसकी प्रभा मंद पड़ जाती है। पर बादलों के हटते ही पूर्ववत् प्रकाश हो जाता है। इस ब्रह्म के आगे भी माया का जाल, माया का बादल आ गया है। इस माया के जाल, इस माया के बादल के कारण यह जीव अज्ञान में परिणमन कर रहा है। शुक्ता में रजत की भ्रांति हो रही है। इस भ्रांति को मिटाने का काम ज्ञान करता है तो हमारे हृदय में जो राग द्वेष की ग्रंथि, गाठ है वह कब टूटेगी, कब खुलेगी। जब ज्ञान का प्रकाश होगा तब ग्रंथि का भेदन होगा, ग्रंथि का छेदन होगा।

यह ज्ञान हमें संतों की वाणी के द्वारा संतों के अनुभव द्वारा होता है। संतों के वचन उनके अनुभवों को भगवती, गीता भागवत आदि नामों से पुकारते हैं। सब एक ही स्वर से कहते हैं कि ज्ञान प्राप्त करो और विकारों को हटाकर शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाओ, जहां हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि हम धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ जावेंगे। याद रखिए धर्म में लड़ाई नहीं, धर्म में कषाय नहीं, धर्म में झगड़े नहीं, धर्म में तिरस्कार

नहीं, धर्म में उन्द्र्न्हुलता नहीं है धर्म तो निश्रेयस दिखाने वाला होता है। जहां धर्म आया वहां शांति आई, वैराग्य आया, उदासीनता आइ, और त्याग आया। जहां ये सब आये कि वहां प्रेम का सागर उमड़ आता है और प्राणी मात्र हमारे मित्र बन जाते हैं।

' श्रीमद् ने कहा है –'*निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द त्यी गमें त्यांथी मले*' निर्दोष सुख और निर्दोष आनन्द लो फिर भले ही कहीं से मिले, किसी भी स्थान से मिले, किसी भी ग्रंथ से मिले। निर्दोष सुख ही सुख है। निर्दोष का ही नाम चित् है, निर्दोष का ही नाम आनन्द है, निर्दोष का नाम ही आत्मा है निर्दोष का नाम ही शिव है।

जैन दर्शन में, वैष्णव दर्शन में कहीं भी संकीर्णता नहीं है। सकीर्णता तो अपने उपासकों ने पैदा करदी है। जहां विशाल ज्ञान होता है, अनेक शास्त्रों का अध्ययन होता है, भिन्न धर्मों की पवित्र पुस्तकों का अनुभव होता है, उन संतों की दृष्टि विशाल हो जाती है। अभी अभी आपने सुना कि *उदारचरितानां वसुधैव कुटुम्बकम्*' यानी उदार चरित्र वालों के लिये सारा विश्व ही उनका कुटुम्ब हो जाता है। मुनि श्री के विशाल विचारों से विशाल दृष्टि से मुझे खुशी हो रही है। सबके साथ आत्म ब धुत्व की भावना रखकर हम आपस में समन्वय करते जांय तो सही रूप में हम एक दूसरे के निकट पहुंच कर, एक दूसरे में सद्-गुणों का दर्शन कर सकेंगे। हमें गुणानुरागी, गुणदृष्टा बनना

है छिद्रान्वेशी नहीं बनना है। जगत में गुण ही गुण देखते जाओ और गुण ही गुण ग्रहण करते जाओ फिर देखोगे कि अपने अंदर कितना आनन्द होता है। कितनी शांति का अपने अनुभव करते हैं। मैं तो रोज ही आपको सुनाती हूँ आज तो मुझे सुनना था। मैं तो मन से निवेदन करूँगी कि हमारे देश में जो साम्प्रदायिक विष है उसे भारत से निकाल देना है और एक दूसरे के नजदीक आकर समन्वय करके देश की और धर्म की उन्नति करना है। सबको प्याऊ लगा कर स्नेह रूपी जल का पान करा कर जहर को धोना है।

॥ ॐ शांति शांति शांति ॥

त्रिपोलिया
रतलाम २२ १० ६३

आत्म-विकास की श्रेणियां

आज बड़े आनन्द का दिन है कि मुझे दिगम्बर बन्धुओं ने यहां आमंत्रित किया और मुझे भगवद् दर्शन का लाभ भी इस मंदिर में मिला। मेरे लिये अभी जो कुछ यहां कहा गया वह अतिशयोक्ति पूर्ण था। अपन सब आत्म स्वतन्त्रता चाहते हैं। चौथे गुणस्थान में बैठा आत्मा चौदहवें गुणस्थान तक पहुचना चाहता है और उसके लिये प्रयत्न करता है।

बधुजनो! वह बड़े सौभाग्य का दिन होगा जब हम में मैत्री भावना जागृत होगी और अपन सबको बधु समझेंगे। जैसे जैसे सम्यग्दर्शन रूपी सूर्य का उदय होगा, मोह, राग, द्वेष अज्ञान कषायरूपी अन्धकार दूर हो जायगा। हमें बाह्य या

व्यवहारिक स्वार्थों से दूर रहना चाहिये और आत्म स्वार्थ में रत होना चाहिये। म्यान में तलवार होती है, पर म्यान और तलवार भिन्न है। म्यान वह खोखा है जिसमें तलवार रहता है। इस शरीररूपी खोखे में आत्मा रहती है। तलवार है तब तक म्यान की कदर है। बिना तलवार के म्यान की जिस प्रकार कदर नहीं होती है, उसी प्रकार आत्म-रहित शरीर का कीमत नहीं होती है।

महानुभावो! जहां हमारे जीवन में मैत्री भावना का बीजारोपण हो गया, सम्यग्दर्शन की प्रतीति हो गई तो भला फिर उसके लिये अब कमी किस बात की रह गई! चतुर्थ में आने वाला चतुर्दश में अवश्य आता है। सारी मुश्किलें चतुर्थ में आने का है। जहां शरीर और आत्मा को एक रूप समझा जाता है, उसे सतों ने मिथ्यात्व कहा है। *'नहीं को सही समझना और सही को नहीं समझना'* यह मिथ्यात्व की परिभाषा है। जड़ को जड़ रूप मानना और चेतन को चेतन रूप मानना यह सही दृष्टिकोण है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम जड़ से अलग रहेंगे। जब तक हम संसारी प्राणी हैं तब तक जड़ में रहना है! परन्तु जड़ से भिन्नता का अनुभव तो अवश्य कर सकते हैं। क्या जैन दर्शन क्या वेदान्त दर्शन-सभी कहते हैं कि इन्द्रियों से परे, बुद्धि से परे, शरीर से परे, मन से परे, आत्मा रहती है। इस भिन्नत्व को समझने वाला ज्ञानी, समझदार और आध्यात्मिक प्राणी गिना जाता है। तब तक आत्म शक्ति अज्ञान

के बादलों से ढँकी हुई है कर्मतजता से आच्छादित है तब तक जीव और शिव का भेद है। द्रव्य से आत्मा एक है परन्तु विकास की दृष्टि से भिन्नता है। एक ही कालेज में पढ़ते हैं इसलिये सब एक हैं, पर अलग अलग कक्षाओं में हैं, अलग अलग विषय पढ़ते हैं, इसलिये अध्ययन की दृष्टि से भिन्नता है। प्रत्येक आत्मा का विकास अलग अलग स्तर का है और इसी कारण से आत्मा महात्मा और परमात्मा का भेद होता है। कहा भी है —

भेद-ज्ञान साबुन भयो, समरस निर्मल नीर।
धोबी अन्तर आत्मा, धोवे निज गुण चीर॥

बधुजनो ! जिन चौदह गुण स्थानों का अपन वर्णन करते हैं, पढ़ते हैं वे कहां से और कैसे तय्यार होते हैं ? ये पगथिये ईंट, चूने, पत्थर से तो तैयार नहीं होते हैं। जैसे जैसे हम भेद ज्ञान को समझेंगे, कषायों से रहित होकर आत्मा को निर्मल करते जायेंगे वैसे वैसे हम आत्म-विकास की श्रेणियों पर उत्तरोत्तर चढ़ते जावेंगे। चौदह गुण स्थान हमारी आत्मा के विकास की उत्तरोत्तर मंजिलें हैं जिन पर चढ़ना अपना लक्ष्य होना चाहिये।

बधुओ ! यदि अपन विषयों के गुलाम हैं, इन्द्रियों के गुलाम हैं, 'बाह्य' स्वार्थों के गुलाम हैं तो अपन कगाल हैं, पर यदि अपन ने इनकी गुलामी को छोड़ दिया है या छोड़ने का प्रयत्न शुरू कर दिया है तो आज भी अपन लाखों के लाल हैं।

व्यवहार दृष्टि से आत्मा ही कंगाल बनता है और आत्मा ही लाखों का लाल बनता है यह तन भी मिट्टी है और धन भी मिट्टी है इस बात को समझ लेने से, हृदय ग्राह्य कर लेने पर आप अवश्य ही आत्मविकास कर सकेंगे।

इस संबंध में एक दृष्टांत याद आ गया। एक पंडित और पंडितानी थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम का संबंध त्याग कर अपना समय साधना में लगाने का, त्यागी जीवन व्यतीत करने का तय किया। प्रभु स्मरण, प्रभु भक्ति, परमात्मा के गुणों का चिंतवन करने में उनका समय जाता था। देवचन्द्रजी ने एक स्थान पर कहा भी है —

प्रभु पणे प्रभु ओलखी रे, अमल विमल गुण गेह।
साध्य दृष्टि साधक पणे रे, वंदे धन्य नर तेह॥

उन महात्माओं को धन्य है जो प्रभु का स्वरूप समझ चुके हैं और उन्हीं को जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है।

एक समय ये दोनों कहीं जा रहे थे। पंडितजी आगे आगे और पंडिताइन कुछ पीछे, पीछे चल रही थी। पंडितजी की नजर रास्ते में पड़े हुए सोने के गहने पर गिर गई। उन्होंने यह समझ कर कि कहीं पंडिताइन का मन नहीं ललचा जावे, उस पर धूल डाल दी। पंडिताइन ने दूर से ही चमकते हुए गहने को देख लिया था पंडितजी को उस पर धूल डालते देखकर बोली कि

आप धूल को धूल से क्यों ढांक रहे हो ? बंधुजनो ! जब विवेक की आंख खुल जाती है, प्रलोभन का आवरण हट जाता है तो सुवर्ण भी धूल के समान नजर आता है।

महानुभावो ! जीवन में मैत्री भाव आ जाने पर सभी गुण दौड़ कर आ जाते हैं। दिगंबराचार्य ने कहा भी है—

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदम् क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्व ।
माध्यस्थ भाव विपरीत वृतौ सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

याद रखिये ! क्या जैन, क्या अजैन, क्या दिगंबर क्या श्वेताम्बर सभी संत एक स्वर से एक ही बात कहते हैं कि प्राणी मात्र के साथ मैत्री भाव रक्खो। जहां भी कोई-गुणवान नजर आ जाय उनको देखते ही आपके हृदय में प्रेम उमड़ आवे, फिर भले ही वह किसी भी धर्म के, किसी भी समाज के हो। जब हमारी दृष्टि ठीक हो जाती है तो हमें दुर्गुणियों में भी गुण नजर आवेंगे। सम्यक् दर्शन प्राप्त होने का अर्थ क्या है? दृष्टि का परिवर्तन। जहां दृष्टि पलटी कि सृष्टि भी पलट जाती है। नारियल में जब तक पानी है तब तक वह काचली से चिपका हुआ रहता है पर पानी सूखते ही नारियल काचली में रहता हुआ भी उससे अलग हो जाता है। इसी प्रकार जिनकी सम्यक् दृष्टि हो जाती है वे संसार में रहते हुए भी उस से अलिप्त रहते हैं। अनासक्त रहते हैं। आप शक्कर की मक्खी बनो। शक्कर की मक्खी शक्कर का स्वाद लेकर उड़ जाती

है, पर शहद का मक्खी प्राण गवा देती है।

बधुनो ! दुखियों के ऊपर करुणा भाव, दया भाव, असहायों के प्रति सहायता करने का भाव और दरिद्रों के प्रति सहयोग का भाव, अज्ञानियों को ज्ञान दान देने का भाव रखना चाहिये। सज्जन हृदय, सम्यग्-दर्शनी दिल वही होता है, जो दूसरों को दुखी देखकर उसकी सहायता को दौड़ जाता है। भावनाएँ ऊंची रक्खो भावनाएँ पवित्र रक्खो।

भाइयो ! जब कभी आपके सामने कोई विपरीत आच रण करने वाला आवे, असद्व्यवहार करने वाला आवे तो उनसे घृणा मत करो, उनके प्रति मध्यस्थ भाव रखो। *"पाप से घृणा करो, पापियों से घृणा मत करो।"* उनके तो असत् कर्मों का उदय हुआ है। उनके प्रति मध्यस्थ भाव रक्खो और ऐसा प्रयत्न करो कि वे सद्मार्ग पर आवें।

मैत्री भाव, प्रमोद भाव, करुणा भाव और मध्यस्थ भाव इन चारों भावनाओं को जीवन में स्थान दो। इन्हीं भावनाओं को अपनाने से *'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष मार्गः'* यह जो मोक्ष मार्ग है, उसे हम प्राप्त कर सकेंगे।

ॐ शांति शांति शांति

दिगम्बर जैन मंदिर
[illegible] ३-१०-६३

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य

कार्तिक शुक्ल १५ सं ११४५ को आचार्य हेमचंद्राचार्य ने पूर्णिमा के चन्द्र के समान संसार को प्रकाश और शांति देने के लिए जन्म लिया। शर्मा डा प्रेमसिंहजी ने आचार्यश्री के जीवन पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। पांच वर्ष की उम्र में आप संस्कारी बने और सात वर्ष की उम्र में त्यागी बने। आचार्य जिनदत्तसूरिजी ने आठ वर्ष की उम्र में संयम लिया, जिनकुशल सूरिजी ने दस वर्ष की उम्र में दीक्षा ली। बालक ध्रुव बचपन में ही भक्त ध्रुव बन गये। यह पूर्व के संस्कारों का फल है।

आचार्य हेमचन्द्राचार्य के प्रभाव में आकर राजा कुमार पाल ने गुजरात और सौराष्ट्र को अहिंसामय बना दिया। यहां के काश्तकार शाकाहारी बन गये। कसाईखाने बन्द हो गये।

कुमारपाल ने कसाइयों को तीन वर्ष का खर्च दिया जिससे वे नया काम काज शुरू कर सके। पर आज हमारा वृत्ति क्या हो रही है ? हम काम भी करना चाहते हैं और कंजूसी भी करना चाहते हैं। आचार्य हेमचन्द्राचार्य ने आचारों और विचारों में ज्योति जगाई, उसके फलस्वरूप उनके प्रचार में भी दृढ़ता आई। बन्धुओ ! आज हम कितने कमजोर हो गये हैं कि एक शहर या एक गांव में भी अमारि-पटह नहीं बजा सकते । अरे ! हम में तो इतनी भी शक्ति नहीं रही कि हमारे बुजुर्गों ने जो वर्ष ८-१० दिन जीव रक्षा के लिए रक्खे थे, उनको भी हम रक्षा नहीं कर सके हैं। आज हमें हेमचन्द्राचार्य, जिनदत्तसूरि, राजा कुमारपाल और मन्त्री उदयन याद आ रहे हैं।

राजा कुमारपाल के समय में जानवरों को भी छान कर पानी पिलाया जाता था। कुछ लोग कहते हैं कि सभी पानी में कीड़े नहीं होते। पर यह भी तो अपन नहीं कह सकते हैं कब और किस पानी में कीड़े होंगे। इसलिए यतना पूर्वक कार्य करना चाहिए। कहा भी है —

> दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम्, वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
> सत्यपूतं वदेत् वाक्यम्, मनः पूतं समाचरेत् ॥

देख कर चलना चाहिए, छान कर पानी पीना चाहिए, सत्य वचन कहना चाहिए और शुद्ध मन से आचरण करना चाहिए।

बन्धुनतो! आजकल सरकार ने महीने में चार दिन की छुट्टियां दी हैं पर अपन एक दिन की भी निवृत्ति नहीं लेते हैं, धर्म का व्यापार नहीं करते हैं, निरालानन्दन के माल को नहीं खरीदते हैं। राजा कुमारपाल महीने में अनेक भाइयों के साथ बारह दिन निवृत्ति लेते थे। चार महाने चातुर्मास में ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।

११ १२ वी शताब्दी जैन शासन के अभ्युदय को शताब्दी थी। एक तरफ तो कुमारपाल न गुजरात और सौराष्ट्र को अहिंसामय बनाया, दूसरी ओर मालवा, राजस्थान और पंजाब में जिनदत्तसूरिजी ने अहिंसा का डंका बजाया था।

महाराज कुमारपाल राज्य पाने के बाद अपने प्राण दाता आचार्य हेमचन्द्राचार्य को भूल गये थे। आचार्य हेमचन्द्रार्य ने उदयन मन्त्री के मार्फत कुमारपाल को सावधान किया कि आज रात्रि को वे महल में नहीं जावे। सचमुच ही उस रात्रि को महल पर बिजली गिरी और रानी का मृत्यु हो गई। राजा को तुरन्त ही भान हुआ और दूसरी बार प्राण रक्षा करने वाले आचार्य श्री के चरणों में गिर कर बार बार क्षमा मांगने लगा।

उन्हीं दिनों में जब कि कुमारपाल पुनः आचार्यश्री के सम्पर्क में आया था, प्रजाजनों ने प्रभास पाटन के सोमेश्वर मंदिर का जीर्णोद्धार करने की प्रार्थना की। कुमारपाल ने यह भाव व्यक्त किया कि यह कैसे हो सकता है कि मैं तो आलीशान

महलों में रहूं और मेरे बुजुर्गों द्वारा बनाये गये धर्म स्थान जीर्ण शीर्ण अवस्था में रहें। तुरन्त ही उसने जीर्णोद्धार की आज्ञा प्रसारित करदी। कुमारपाल ने जीर्णोद्धार के दिनों में मांसाहार का त्याग कर दिया। प्रतिष्ठा के समय कुमारपाल के आचार्यश्री को भी पधारने की प्रार्थना की जिसे आचार्यश्री ने स्वीकार कर लिया। प्रतिष्ठा के अवसर पर किन्हीं व्यक्तियों ने कुमारपाल के कान भर दिये कि आचार्य हेमचन्द्राचार्य तो महादेव को नहीं मानते हैं और उन्हें धन्न नहीं करते हैं। कुमारपाल अभी आचार्यश्री के सम्पर्क में पुनः आया ही था, उससे रहा नहीं गया और आचार्यश्री से यह प्रश्न कर ही बैठा। आचार्य हेमचन्द्राचार्य ने तुरत ही उत्तर दिया —

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।

हे राजन्! मैं उन सभी महापुरुषों को वंदना करता हूँ जिन्होंने राग द्वेष को जीत लिया है, कषायों का क्षय कर दिया है और जो वीतराग बन गये हैं, फिर भले ही वे ब्रह्मा हों, विष्णु हों, हरि हों या जिन हों।

मधुजनो! इसे कहते हैं '*सर्व धर्म-समन्वय*' परन्तु आज तो हम नाम लेते हैं भव को घटाने का, भव बीजांकुर को नष्ट करने का, पर काम करते हैं भव बढ़ाने का
चर्चा करते ... यह तो अभी करने का समय

से मोक्ष की प्राप्ति होगी, चर्चा करने से नहीं।

एक समय कुमारपाल ने हेमचंद्राचार्य को फटी चद्दर पहने हुए देखकर कहा कि मुझे चद्दर का लाभ दें हेमचन्द्राचार्य समझ गये। उन्होंने कहा कि राजन्! मेरी फटी चद्दर देखकर तो आपको शर्म लग रही है परन्तु तुम्हारे राज्य में फटे पुराने कपड़े पहिनने वालों की भी कभी तुमने खबर ली है। गुरु और शिष्य दोनों समझदार थे। कुमारपाल ने तुरन्त ही राज्यादेश निकाल दिया कि मेरे राज्य में न कोइ भूखा रहेगा और न कोई नगा। उनके खाने पीने और वस्त्र की व्यवस्था राज्य द्वारा होगी। हेमचद्राचार्य के धर्मोपदेश के कारण कुमारपाल ने १४ हजार मंदिर बनवाये और १६ हजार मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। तारंगा तीर्थ का गगन चुंबी भव्य मंदिर कुमारपाल ने बनाया था। १८ देशों में उसने अमारि पटह बजा दिया लाखों, करोड़ों रूपये खर्च कर सात जगह भंडार स्थापित किये।

श्री हेमचद्राचार्य ने सवालाख श्लोक की सिद्ध-हेम व्याकरण बनाई। इसे तीन सौ मोहरें प्रतिदिन देकर तीन वर्ष में राजा सिद्धराज ने सोने के अक्षरों में लिखवाई। आचार्य हेमचद्र ने अनेक ग्रंथों की रचना की। इनके ज्ञान का तो क्या कहना? इसीलिये तो वे "कलिकाल सर्वज्ञ" कहलाये।

श्री हेमचद्राचार्य के जीवन पर १८२० पुस्तकें लिखी गई है। खरतरगच्छ के आचार्य जिनहर्ष सूरिजी ने कुमारपाल

रास मनाया और पिपलिया गच्छ के आचार्य ने हेमचन्द्राचार्य की स्तुति की। कितनी उदारता थी उन महापुरूषों में? एक अपन हैं कि छोटी छोटी बातों में गच्छ और सम्प्रदाय के झगड़ों में जिन शासन की प्रतिष्ठा कम करते हैं। जरा सोचो तो सही अपन नवपदजी की पूजा पढ़ाते हैं जो यशो विनयजी, ज्ञान विमलजी और देवचंदजी इन तीनों की बनाई हुई है। इस त्रिवेणी रचित पूजा को तो पढ़ाते हैं पर हृदय का राग-द्वेष समाप्त नहीं होता है।

अपना सिर श्रद्धा से झुकता है हेमचन्द्राचार्य और कुमार पाल के लिये। उनकी ज्योतियों से आज भी प्रकाश मिल रहा है। अपन प्रार्थना करें कि हे आचार्य श्री! आप पुन पधारें, चमकें और अहिंसा, सत्य तथा जिन शासन का झंडा फहरायें तथा गये हुए गौरव की पुन स्थापना करे।

ॐ शांति शांति शांति

त्रिपोलिया
रतलाम ३१ १० ६३

स्नेह-सम्मेलन
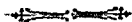
बन्धुजनो ! आज यहां मुनि 'पंडितरत्न मूलचन्दजी' महाराज सा., महासतीजी तथा साध्वीजी की उपस्थिति से मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। श्रीसंघ मां-बाप होता है और वे बच्चों की पीठ थपथपा कर उनसे काम लेते हैं। कई वक्ताओं ने और अभी अभी डा. प्रेमसिंहजी ने विश्व प्रेम प्रचारिका आदि कई शब्द कहे हैं। मेरा हृदय अभी भी गद्गद हो रहा है। वह दिन धन्य होगा जब विश्व प्रेम परिपूर्ण रूप से जीवन में आ जायगा। उस दिन अपन भगवान बन जावेंगे। विश्व प्रेम प्राप्ति और अरिहंत स्थिति की प्राप्ति में अन्तर नहीं होता है। याद रखिये *"प्रेम में धर्म है, द्वेष में धर्म नहीं है।"* किसी भी निमित्त को लेकर अन्तर विष घुलता है तो विश्व प्रेम कमजोर बन जाता है। धर्म के लक्षण

श्री पं० बसन्तीलालजी ने सुन्दर शैली से बतलाये हैं। वास्तव में सर्वत्र सत्यांश मौजूद है। अपन जब तक छद्मस्थ हैं तब तक सत्य को पूर्ण रूप से नहीं देख सकते हैं। ब्रह्मा को जपने वाले, हरि को जपने वाले, अरिहंत को जपने वाले सार हो सत्य की दृष्टि से जपते हैं, व्यवहार की दृष्टि से जपते हैं, आत्म विकास का दृष्टि से जपते हैं। इसलिए सभी मजहबों के महापुरुषों का आदर करो, उनके लिए अनादर के शब्द मत निकालो। योगीराज आनन्द-घनजी के य शब्द मन में उतार लो, हृदय में जड़ लो —

राम कहो रहमान कहो, कोउ कान्ह कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोई ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री॥

महानुभावो! अपन सब भगवान महावीर की पाठशाला के विद्यार्थी हैं। भगवान महावीर के कानों में कीले ठोके गये, पर फिर भी वे शांत रहे। क्रोध करने के बजाय, ताकत आज-माने के बजाय उन्होंने तो उल्टा उसका धन्यवाद किया कि इस निमित्त से मुझे कर्मों का निर्जरा करने का अवसर तो प्राप्त हुआ। अपन को भी अगर कोई कटु शब्द कहे या कोई अपना विरोध करे तो उसे शांत भाव से बरदास्त करना सीखना चाहिए। भगवान महावीर ने हमें सन्देश दिया है कि—*"सहना सीखो, कहना मत सीखो।"*

बन्धुओ! ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर हुए थे। अपन भी उसी समय किसी न किसी योनि में होंगे, सम्भव है

भगवान के समवसरण में गये होंगे, प्रभु के दर्शन भी किये होंगे, पर फिर भी अपन रखड़ रहे हैं, अपना उद्धार नहीं हुआ है। कारण साफ है कि अपन ने वीतराग के सिद्धान्तों को जीवन में नहीं उतारा। देवचन्दजी ने ठीक ही कहा है—

रागी संगे रे राग दशा वधे, थाये तेथे संसारोजी।
नीरागी थी रे रागनु जोड़वु, लहिए भवनो पारोजी॥

संसारी जीव राग द्वेष से भरा हुआ है उसके साथ राग करने से संसार की वृद्धि होती है, परन्तु निरागी परमात्मा से राग करने से, उनसे प्रेम करने से यह जीव भव समुद्र से पार हो जाता है। सब बाहरी वस्तुओं से प्रेम हटा कर वीतराग प्रभु से प्रेम करना ही श्रेष्ठ मार्ग है।

पूज्य मुनि महाराज ने मुझ धर्म पुत्री के प्रति जो सद्भाव रक्खा और समय समय पर जो मुझे प्रोत्साहित किया उसके लिए मैं उनका आभार मानती हू। समस्त पूज्य साध्वी मण्डल की तो मुझ पर पूर्ण कृपा रही। बाहर भी गये तो एक मिनिट बोले बिना आगे नहीं बढ़े। कितना विशाल हृदय है इन सबका? मेरा हृदय तो प्रेम का प्यासा है, मुझे तो प्रेम चाहिए। अपन सब की वाणी से, आंखों से, हृदय से और व्यवहार से अमी बरसे। यहां के सभी भाइ, बहिनों ने, जैन, वैष्णव सभी मजहब के भाई बहिनों ने जो मेरे प्रति सद्भाव रक्खा, प्रेम भाव दर्शाया उसके लिये मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूं। *'नमो अरिहंताण'* और

धर्मो (सिद्धान्त) में भगवान रामचन्द्र का, भगवान महावीर का समावेश हो जाता है। अपन उनके उपासक होने के नाते, उनके पुत्र होने के नाते भाई भाई हैं। इस भाईचारे को भूलकर दुश्मनी धारे में मत पड़ना। हो सकता है कभी कोई भाई गलती कर जाय तो उसकी गलती को ध्यान में नहीं लाना चाहिये। एक दिन के बुरे व्यवहार के कारण जीवन भर के अच्छे व्यवहारों पर पानी नहीं फेरना चाहिये। भूल किससे नहीं होती है? अपन सब भूल करते हैं। पर जो भूल को क्षमा करता है वही मानव है। गांधीजी अहिंसा की मूर्ति नोआखाली गये थे। क्रोध को शांत करने, खून खराबी को रोकने और राष्ट्र पिता अपने काम में सफल भी हुए। अपन भी कषाय भाव नहीं, लावें कषायों के निमित्त भी नहीं बनें और न कषायों के उपशमने के कारण बनें।

मैं तो विश्व प्रेम प्रचारिका हूँ प्रवर्तिका नहीं हूँ। इसका अर्थ यह है कि मैं अभी विश्व प्रेम की नगरी में पहुँचने का प्रयत्न कर रही हूँ। आप भी चलें। रतलाम वालों ने स्नेह का जो बर्ताव किया है, स्नेह का जो वातावरण बनाया है उससे आपका इतिहास बन गया है। इस स्नेह को सदा बनाये रक्खें। याद रखिये, एक धर्मशाला में कई स्थानों के मुसाफिर ठहरते हैं। अपनी अपनी कोठरियों में ठहरते हैं, फिर भी परस्पर बोलते हैं मिलते-जुलते हैं, साथ बैठ कर भोजन करते हैं और कभी कभी तो खाने पीने की चीजों का आदान प्रदान भी कर लेते हैं। अब

इम ससारी कार्यों में एक दूसरे के इतने निकट आ जाते हैं तो धर्म कार्य में क्यों नजदीक नहीं आ सकते है ? अवश्य आ सकते हैं और आप रतलाम वालों ने यह करके बतला दिया है। यह खयाल मत करो कि हमारी सम्प्रदाय टूट जावेगी, हमारे अनुयायी इधर उधर हो जाएँगे। जाय तो जाने दो, क्या डोरी से बांधने से सम्प्रदाय रह सकती है ? अपने बड़े विचार रखें, हृदय को सागर बनावें। सागर कंकड़ों को भी जगह देता है और रत्नों को भी जगह देता है।

मधुजनो! इस आत्मा पर जैसा रंग चढ़ाओगे वैसा चढ़ेगा। जैसा संग वैसा रंग होगा। मुझे इस बात पर एक दृष्टांत याद आ गया है। एक राजा घोड़े पर घूमते घूमते एक जंगल में पहुंच गया। उसे देखकर पेड़ पर बैठा हुआ पोपट बोला '*राजा आया है, राजा आया है, लूटो, लूटो*' राजा समझ गया कि यह चोरों का स्थान है। तेजी से घोड़े को दौड़ाया और काफी दूर दूसरे जंगल में पहुंच गया। वहां भी एक तोता पेड़ पर बैठा था। राजा को देखते ही बोल उठा कि '*राजा आया है राजा आया है स्वागत करो स्वागत करो*' झट पास के तपोवन से ऋषि-महात्माओं ने निकल कर राजा का स्वागत किया। राजा ने दोनों पोपट की बात बतलाई। तब ऋषि ने कहा कि ये दोनों पोपट सगे भाई हैं। एक चोरों के हाथ लग गया और एक यहां तपोवन में रह रहा है। एक मां बाप की सन्तान होते हुए भी संग दोष से विचारों में परिवर्तन हो गया। इसीलिये

कहा है कि *'जैसा संग, वैसा रंग।'* संगति बनाती है और संगति बिगाड़ती है। इसलिये अपन को अच्छी संगति ही तो करना चाहिये, न मिले तो मत करो पर बुरी संगति कभी मत करना। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि एक भव के कर्मों से हजारों भवों के कर्मों की निर्जरा हो जाय। कहीं ऐसा न हो कि इस भव के कर्मों से अनंत भवों के कर्म बंध जाय।

अभी श्रीसंघ की ओर से मुझे *'समन्वय-साधिका'* की पदवी देने की बात कही गई है। आप पदवी शब्द मत लगाइये मुझे तो ऐसा पाठ पढ़ावें कि मैं समन्वय साधिका बनूं, विश्व प्रेम प्रचारिका बनूं सबकी सेविका बनूं और प्राणिमात्र की हित चिन्तिका बनूं। आपके आशीर्वादों का स्वागत करती हुई यह संकल्प करती हूँ कि जो संदेश आपने दिये हैं उनको पूरा करने का प्रयत्न करूंगी।

॥ ॐ शांति शांति शांति ॥

त्रिपोलिया
ग्राम २११६

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म.

जैन दिवाकरजी की जयन्ती में सम्मिलित होने का मुझे यह द्वितीय अवसर प्राप्त हुआ है। पहले कोटा में अवसर मिला था। पर उस अवसर पर वहां कोई मुनिराज नहीं थे पर आज तो यहां मुनिराज भी उपस्थित हैं, मानों दूध और शक्कर का मिलान हो गया। जिन्होंने अपने जीवन में विजय पा ली उन्हीं की याद में जयन्ती मनाई जाती है। प्रत्येक मजहब में प्रत्येक देश में महापुरुष होते हैं और भविष्य में भी होंगे। ज्योति से ज्योति जलती आई है, कड़ी से कड़ी मिलती आई है। उन उपकारियों को याद करके उनको श्रद्धान्जलि देना, उनके गुणगान करना यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है।

जैन दिवाकरजी के कोटे के महत्वपूर्ण कार्य को कैसा भुलाया जा सकता है। उन्हीं की प्रेरणा से आचार्य आनन्द सागरजी महाराज सा तथा दिगंबर संत सूर्यसागरजी महाराज सा, इन दोनों संतों के एक मंच पर सामूहिक रूप से प्रवचन हुए। उन्होंने शिष्य परंपरा को मार्ग दर्शन दिया, भविष्य के लिये एकता का मार्ग खुला कर दिया। कहा भी है महाजनो येन गतः स पंथा—महापुरुष जिस मार्ग को खोल देते हैं, वह बन जाता है और अनेक उसके पीछे पीछे सही रास्ते हैं।

जैन दिवाकरजी ने जंगल से लेकर महलों तक में प्रचार कार्य किया, जिन शासन का झंडा फहराया जिन शासन की ध्वजा लहराई। अपने लोगों का कर्तव्य होता है कि उनके सिद्धान्तों को जीवन में सही रूप देकर प्रेम की नदियाँ बहावें, व्यवहारिक भेद-भावों को स्थान नहीं दें। कोटे में एक स्थान पर विराजमान हो जाने से क्या सूर्यसागरजी महाराज सा ने मोरपींछा और कमंडल छोड़ दिया था, या किसी ने आनन्दसागरजी महाराज सा के हाथ में की मुंहपत्ती को लेकर उनके मुंह बांध दी थी या किसी ने दिवाकरजी की बंधी मुंहपत्ती खोलकर उनके हाथों में दे दी थी? नहीं ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हाँ यह बात अवश्य हुई कि अब तक खंडनात्मक, आलोचनात्मक [illegible] में चलते थे, और अब मंडनात्मक नीति से चलते हैं। [illegible] भिन्न भिन्न मान्यताएँ वाले होने पर भी तीनों संतों ने [illegible] बताया कि आज हमको और आपको साथ बैठने का मौका मिला। जैन दिवाकरजी ने समन्वय का पाठ [illegible] परम भेंट है। कहा भी है —

सेयंबरो वा आसंबरो बुद्धो वा तह [illegible]
समभाव भावी-अप्पा लहइ मोक्खं [illegible]

अर्थात—चाहे श्वेताम्बर हो [illegible] किसी अन्य मत को मानता हो, जो [illegible] वही आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है।

जैन दिवाकरजी ने विशाल [illegible] लिपट जाने पर भी संयम लिया। [illegible] बड़ा बहुमान है। इस जयंती के [illegible] भेंट चढ़ाने के रूप में आप भी [illegible] सके ब्रह्मचर्य व्रत धारण करें।

जैन दिवाकरजी उन सतों में से हैं जिन्होंने जगत के लिये अपने जीवन को अर्पित किया। अहिंसा-धर्म को फैलाया और राजा महाराजाओं को उपदेश दिया। दिवाकरजी तो मालवा के हो खास हैं, आप मालवा निवासियों के लिये तो यह विशेष गौरव की बात है। देश की आघात मणियों में एक अर्वाचीन मालव मणि भी जुड़ गई।

जैन दिवाकरजी के लिये मैं अधिक और क्या कहूं कुछ तो बाकी नहीं रहा। सारी ही वर्षा बरस गई। एक ही बात में कहती हूँ कि अर्वाचीन जिन शासन प्रवाहकों में, दिवाकरजी का नाम हमेशा इतिहास में अमर रहेगा और इस सदी के चम कते हुए सितारों में हमेशा उनका अस्तित्व रहेगा। मैं भी उनसे प्रार्थना करती हूँ कि वे सदगत दिव्य भूमि से हमें यहां ऐसी प्रेरणा भेजते जाय कि जिससे अपन भी समन्वय के पथ पर आगे बढ़ें। उनकी आत्मा का प्रतिबिंब हम अपने आप को बनाने का प्रयत्न करें जिससे कि हम जैन दिवाकरजी महाराज सा० के सच्चे गुणग्राही बन कर सच्चे उपासक बनकर, उनके आदर्शों को अपने जीवन में लाने का प्रयत्न करें। मैं इन शब्दों के साथ दिवाकरजी महाराज सा० को अपनी श्रद्धापूर्ण श्रद्धांजलि समर्पित करती हूँ।

ॐ शांति शांति शांति

नीमचौक स्थानक
रतलाम २६ १० ६३

आक्षेप करने वाले प्रकाशित साहित्य का तथा खरतरगच्छ पर आक्षेप करने वाले प्रत्येक साहित्य का प्रतिवाद करके उसका शास्त्र सम्मत सही उत्तर इस संस्था की ओर से दिया गया तथा यह प्रयत्न किया जाता रहा है कि परस्पर समाज में किस प्रकार प्रेम बने व विरोध न हो।

(६) संघ की फलोदी शाखा में उद्योग-गृह तथा श्रमण ज्ञान पीठ की प्रवृत्ति बड़े सराहनीय ढंग से चल रही है। मंदसौर शाखा द्वारा भी श्रमण ज्ञान पीठ चलाया जा रहा है।

(७) पालीताना के शत्रुञ्जय गिरि पर मूलनायकजी की टूंक पर स्थित पांच देहरियों का जीर्णोद्धार करने की स्वीकृति सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढी ने इस शर्त पर दी कि वहाँ जीर्णोद्धारकर्त्ता का नाम अंकित नहीं किया जावेगा। संघ के वाइस-प्रेसिडेन्ट श्रीमान गुलाबचन्दजी गोलेछा ने इस शर्त को स्वीकार कर सतरह हजार का चेक उन्हें भेज दिया तथा प्रतिष्ठा के अवसर पर भी आपने १०-१२ हजार रुपये खर्च कर अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया।

(८) पालीताना में दादावाड़ी का एक विवाद श्री दलीचंद अमचन्द द्वारा चल रहा था जिसे श्री गुलाबचन्दजी गोलेछा ने रु ६५००) देकर समाप्त कराया।

सबसे प्रार्थना है कि वह इस संस्था को अपनी मान कर प्रत्येक प्रकार का सहयोग प्रदान करें जिससे यह समाज की सेवा करने में अधिक सक्षम हो सके।

प्रतापमल सेठिया
मंत्री
श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ
३८ मारवाड़ी बाजार बम्बई-२